॥ गीता का भगवान निराकार या साकार ? ॥

श्रीमद्भगवद्गीता को सर्वशास्त्रमयी शिरोमणि कहा जाता है; परन्तु इस महान ग्रंथ में आए हुए 'गुह्यात गुह्यतरम् ज्ञानं' को बताने वाला कौन ? उस ज्ञानदाता का स्वरूप क्या ?- यह सच्ची रीति से कोई नहीं जानता। अगर जानते होते तो गीता की भिन्न-2 अनेक टीकाएँ करने की दरकार क्या थी ? कृष्ण को एक तरफ 16 कला सम्पूर्ण बताते हैं और दूसरी तरफ 8 कला के द्वापरयुग में भी डाल दिया है। यह भी कहा जाता है कि द्वापर-अंत में कृष्ण ने गीता सुनाई। तो क्या गीता से कलाहीन पापी कलियुग की स्थापना हुई होगी? इस प्रकार के द्वैत विचारों से गीता का सच्चा रहस्य गुप्त ही रह गया।

आखरीन गीता का सत्य अर्थ बताने वाला कौन? वो स्वयं गीता ज्ञानदाता ही है। इसका प्रमाण भी स्वयं गीता में आया है कि प्रैक्टिकल चैतन्य गीता को रचने वाला अजन्मा, अभोक्ता एवं अकर्ता है, जिस कारण स्वधर्म की स्थापना होती है। बच्चा-बुद्धि श्रीकृष्ण की पूजा शास्त्रों के अनुसार मंदिरों में और घरों में भी बच्चे के रूप में दिखाते हैं। अब कोई बच्चा बुद्धि गीता का गुह्य ज्ञान कैसे समझा सकता हैं? कृष्ण, जो जन्म-मरण के चक्र में आता है, वो स्वयं इस गीता-ज्ञान से ही 16 कला सम्पूर्ण देवता बनता है। तो कृष्ण स्वयं गीता माता द्वारा बाप की रचना है, रचयिता नहीं। फिर गीता का रचयिता कौन? वो है स्वयं निराकार ज्योतिबिन्दु स्वरूप परमपिता+परमात्मा शिव। शिव अजन्मा, अभोक्ता के साथ-2 अकर्ता एवं अव्यक्त है; परन्तु निराकार शिव बिन्दी बिना किसी आधार के, बिना किसी साकार मूर्ति के कुछ नहीं कर सकती; इसलिए निराकार परमपिता शिव को भी किसी साकारी साकार मुकर्रर शरीर रूपी रथ में प्रवेश कर अपना कार्य करना पड़ता है। वो साकार मूर्ति और कोई नहीं, आदिदेव शंकर की आत्मा अर्जुन या आदम है। शिव और शंकर दो भिन्न-2 आत्माएँ हैं; परन्तु शंकर ही पुरुषार्थ सम्पन्न होने पर शिव समान निराकारी, निर्विकारी, निरहंकारी बनता है और इस साकार में निराकार ही, शिव+शंकर भोलेनाथ, गीता ज्ञानदाता है। गीता का रचयिता निराकार शिव+शंकर भोलेनाथ है, न कि साकार रचना श्रीकृष्ण।

वैदिक साहित्य (कठोपनिषद् 1.3.3-4) में कहा गया हैः

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

भावार्थ - ''प्रत्येक आत्मा इस भौतिक शरीर रूपी रथ पर आरूढ़ है और बुद्धि (गीता 7-10) इसका सारथी है। (चार संगठित मुख रूप) मन लगाम है तथा (वही) इन्द्रियाँ घोड़े (भी) हैं। इस प्रकार मन तथा इन्द्रियों की संगति से यह आत्मा सुख या दुख का भोक्ता है। ऐसा बड़े-2 चिन्तकों का कहना है।''

परमपिता+परमात्मा कौन है ?
1. गुरुओं के गुरु
2. ॐ का अर्थ
3. परमपिता+परमात्मा और देवात्मा में अन्तर
4. परमपिता+परमात्मा का नाम
5. परमपिता शिव का रूप
6. परमपिता शिव का घर
7. परमपिता शिव का देश
8. परमपिता शिव का कार्य काल
धर्म और अधर्म
9. धर्म-अधर्म की परिभाषा
10. घोर अधर्म का मूल
11. अधर्म से गीता का खण्डन
12. अधर्म से महाविनाश
12A. परमपिता+परमात्मा का एकव्यापी स्वरूप
13. परमपिता+परमात्मा का साकार अवतरण
14. परमपिता+परमात्मा का साकार में आना ज़रूरी
15. परमपिता+परमात्मा का साकार में गुण
अ) अजन्मा
ब) अभोक्ता
क) अकर्ता
16. परमपिता+परमात्मा का साकार धाम
17. परमपिता+परमात्मा का साकार अवतरण काल
18. परमपिता+परमात्मा का साकार अवतरण वाला देश

19. परमपिता+परमात्मा का साकार रूप
20A. परमपिता+परमात्मा के साकार अवतरण का नाम
20B. उत्थान और पतन का आधार- प्रैक्टिकल चेतन गीता
21. वास्तव में पांडव और कौरव कौन?
22. सच्ची गीता बनाम झूठी गीता
23. भगवान का कर्तव्य

परमपिता+परमात्मा कौन है ?

गुरुओं के गुरु :-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

शास्त्रों की मान्यता अनुसार 33 कोटि देवताएँ मूल रूप से त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के विस्तार स्वरूप हैं। इसमें कोई शंका नहीं कि इन तीन मूर्तियों की ताकत के आगे कोई ताकत नहीं। सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा प्रलयकर्ता शंकर भी अपने-2 रूप में, कार्य में गुरु हैं; परन्तु श्लोक अनुसार "साक्षात गुरु" अर्थात् गुरुओं के भी गुरु और तीनों मूर्तियों के भी गुरु किसी "परब्रह्म" को नमन करने की बात आती है। अब वह परब्रह्म गुरु कौन हैं? उस परम शक्ति को जानने के लिए कुछ बातें समझना बेहद ज़रूरी हैं।

ऊँ का अर्थ :-

हिदुत्व की मान्यता अनुसार तमाम हिदू जनसंख्या वास्तव में तीन प्रमुख हिस्सों में बँटी हुई है- ब्रह्मा को मानने वाले "ब्रह्मसमाजी", विष्णु को मानने वाले "वैष्णव सम्प्रदाय" तथा शंकर को मानने वाले "शैव" अथवा "रुद्र" सम्प्रदाय; परन्तु हैरानी की बात यह है कि अपने आपको इन सम्प्रदायों की विभिन्नता के कारण अलग समझने वाली तमाम मनुष्य-आत्माओं में ब्रह्मा, विष्णु और शंकर- इन तीनों की कार्यकुशलता मौजूद है। स्थापना करने की ताकत, पालन-पोषण करने की क्षमता अथवा विनाश करने की शक्ति- त्रिमूर्तियों के ये मूल गुण प्रत्येक आत्मा में अपनी-2 शक्तियों के अनुसार नं.वार समाए हुए हैं; इसलिए शास्त्रों में आत्मा को कई जगह पर त्रिमूर्तियों के प्रतीक 'ऊँ' शब्द से संबोधित किया गया है। ऊँ का अर्थ ही है- ब्रह्मा का अ, विष्णु का उ और महेश का म। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अ, उ और म से 'ऊँ' शब्द बनता है; परंतु यह अर्थ एक और रहस्य से हमें जोड़ देता है। ऊँ का अर्थ तो हमने समझ लिया; लेकिन ओंकार का क्या अर्थ है? ओंकार का मतलब है- ऊँ का कार्य अर्थात् (अ)

ब्रह्मा का स्थापना का कार्य, (उ) विष्णु का पालना का कार्य और (म) महेश का विनाश का कार्य और इन तीनों कार्य कर्ताओं का नाथ है- ओंकारनाथ। भल ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के कार्य भिन्न-2 हों; परंतु इनके कार्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कार्य सहित तीनों मूर्तियाँ भी जुड़ी हुई हैं; परंतु इन मूर्तियों को जोड़ने वाली शक्ति, उनके कार्यों को कल्याणकारी स्वरूप में जोड़े रखने वाला वह परब्रह्म कौन है? वह कल्याणकारी शक्ति ही वास्तव में ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के होने का मूल कारण है। वह परम शक्ति सिर्फ परमपिता+परमात्मा शिव है; परन्तु शिव का मतलब शंकर नहीं। शंकर तो देवता है और शिव ज्योतिर्बिंदु परमपिता है। मंदिरों में उसी सूक्ष्मतम ज्योतिर्बिन्दु शिव समान बनी भोक्ता आत्मा का बड़ा यादगार शिवलिग पूजा की सुविधानुसार रखा गया है। जो साकार के लिग की यादगार है।

<u>परमपिता+परमात्मा और देवात्मा में अन्तर :-</u>

आज तक हमने महामंत्रों, वेदों और शास्त्रों में नित्य शिव-शंकर नाम सुना है। शिव का नाम हमेशा आगे और शंकर का नाम पीछे होता है। कभी भी शंकर-शिव नहीं कहते। हमेशा शिव-लिग कहा जाता है, शंकर-लिग नहीं। शंकर के मस्तक में दिखाए हुए तीसरे नेत्र को भी शिव-नेत्र कहा जाता है, शंकर-नेत्र नहीं। इसका कारण क्या है ? शंकर को तपस्या करते हुए क्यों दिखाते हैं? वह किसकी याद में लीन हो जाते हैं? इन सब प्रश्नों से एक बात तो स्पष्ट है कि 'शिव' शब्द को वेदों, शास्त्रों और अन्य पुराणों में 'शंकर' शब्द से अधिक महत्व अथवा प्रधानता दी गई है। गीता में इस पर कुछ श्लोक आए हैं, जो इस बात को स्पष्ट करते हैं-

कांक्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्त, इह, देवताः,
क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा॥ 4/12

इह (इस लोक में) **कर्मणाम्** (कर्मों की) **सिद्धि** (सिद्धि के) **कांक्षन्तः** (इच्छुक व्यक्ति) **देवताः** (देवताओं का) **यजन्ते** (यज्ञ पूजनादि करते हैं); **हि** (क्योंकि) **मानुषे लोके** (मनुष्य लोक में) **कर्मजा** (कर्मों से उत्पन्न) **सिद्धिः** (सफलता) **क्षिप्रम् भवति** (शीघ्र होती है)।

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्,
देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ता, यान्ति, माम्, अपि॥ 7/23

तेषां (उन) **अल्पमेधसां** (अल्पबुद्धि वाले, बेसमझ लोगों का) **तु** (तो) **तत्** (वह) **फलं** (फल) **अन्तवत्** (विनाशी) **भवति** (होता है); {क्योंकि} **देवयजः** (ब्राह्मण-देवों के प्रति त्याग करने वाले) **देवान्** (देवताओं को) **यान्ति** (पाते हैं) {और} **मद्भक्ताः** (मुझे भजने वाले) **मां** (मेरे को) {अर्थात् अर्धनारीश्वर शिव के भगवान-भगवती स्वरूप को} **अपि** (ही) **यान्ति** (पाते हैं)।

इन दोनों श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि देवताएँ अलग हैं और परमपिता+परमात्मा अलग। अतः देवताओं की उपासना करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और परमपिता+परमात्मा की उपासना

करने वाले परमपिता परमात्मा को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु भी देव हैं। शंकर भी देवों के देव महादेव हैं; परन्तु ऊँचे-ते-ऊँचे परम शक्ति नहीं। शंकर के भी गुरु वे परब्रह्म परमेश्वर शिव हैं। देवताओं से पहले परमपिता+परमात्मा है; इसलिए शंकर से भी पहले 'शिव' नाम आता है। शिव-शंकर कहा जाता है। त्रिमूर्तियों के भी रचयिता शिवबाबा हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर वास्तव में एक द्वार हैं, माध्यम हैं, जरिया हैं। परमपिता+परमात्मा शिवबाबा ही ब्रह्मा द्वारा स्थापना, विष्णु द्वारा पालना और शंकर द्वारा विनाश का कार्य कराते हैं; इसलिए "शिव+परमात्माय नमः" कहा जाता है। गीता में भी आया है-

अविभक्तम्, च, भूतेषु, विभक्तम्, इव, च, स्थितम्,
भूतभर्तृ, च, तत्, ज्ञेयम्, ग्रसिष्णु, प्रभविष्णु, च॥ 13/16

तत् (वह परमात्मा) **अविभक्तं** (अखण्ड अर्थात् अविभाज्य है), **च** (फिर भी) **भूतेषु** (प्राणियों में) {नं.वार याद की शक्ति रूप से} **विभक्तं** (विभक्त हुआ) **इव** (सा) **स्थितम्** (रहता है) **च** (और) {इस प्रकार} **भूतभर्तृ** (प्राणियों का भरण-पोषण करने वाला विष्णु), **ग्रसिष्णु** (विनाशकर्ता शंकर) **च** (और) **प्रभविष्णु** (उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मा) **ज्ञेयम्** (माना जाता है)।

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी रचने वाले परमपिता+परमात्मा शिवबाबा हैं; इसलिए सदा शिवज्योति को सभी स्वधर्मी-विधर्मी या मनुष्य और समस्त देव-असुर याद करते हैं। इसी परमपिता शिव को शंकर महादेव भी याद करते हैं, स्मरण करते हैं- यही कारण है कि शंकर को हमेशा याद अर्थात् तपस्या में दिखाते हैं।

<u>परमपिता+परमात्मा का नाम :-</u>

प्रत्येक आत्मा में अच्छे व बुरे, दोनों प्रकार के संस्कार समाए हुए होते हैं, भल इनका परिमाण कम-ज्यादा हो या अलग हो; परन्तु सभी आत्माओं, खासकर मनुष्य-आत्माओं में दोनों प्रकार के संस्कार होते ही हैं। इन्हीं संस्कारों की वजह से मनुष्य-आत्मा कभी पुण्य कर्म करती, तो कभी पाप कर्म करती; कभी महान कार्य करती, तो कभी घिनौना; कभी स्व के रथ/शरीर अर्थात् स्वार्थ के प्रति अकल्याण कर्म करती तो कभी परमार्थ के प्रति कल्याणकारी कर्म भी करती है; इसलिए आत्मा का कोई नाम नहीं होता है; क्योंकि कोई भी नाम काम के आधार पर पड़ता है और आत्मा के प्रत्येक कर्म का फल भिन्न-2 होता है। अभोक्ता परमपिता परमात्मा और भोगी आत्मा में यही मुख्य अन्तर है। परमपिता शिवबाबा का कोई भी कार्य अकल्याणकारी नहीं होता, उनके द्वारा किए हुए हर कर्म का फल सदैव कल्याणकारी ही होता है; इसलिए शास्त्रों में उनकी ज्योतिबिंदु आत्मा का नाम 'शिव' रखा है। शिव का अर्थ ही है- कल्याणकारी, इसलिए परमपिता+परमात्मा को 'सदाशिव' कहा जाता है।

<u>परमपिता शिव का रूप :-</u>

आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा कैसी होती है? आत्मा मूल रूप में सूक्ष्म, ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप है। वह अणु से भी सूक्ष्म अणु, अव्यक्त है। तो फिर परमपिता शिव कैसे होंगे? उनका स्वरूप क्या है? जैसे साँप का बाप साँप जैसा लम्बा ही होता है, हाथी का बाप हाथी जैसा होता है, वैसे ही आत्माओं का बाप परमपिता परमात्मा भी आत्मा-समान सूक्ष्म, ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप, अति सूक्ष्म अव्यक्त है। गीता में भी आया है-

कविम्, पुराणम्, अनुशासितारम्, अणोः, अणीयांसम्, अनुस्मरेत्, यः,
सर्वस्य, धातारम्, अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्णम्, तमसः, परस्तात् ॥ 8/9
प्रयाणकाले, मनसा, अचलेन, भक्त्या, युक्तः, योगबलेन, च, एव,
भ्रुवोः, मध्ये, प्राणम्, आवेश्य, सम्यक्, स, तम्, परम्, पुरुषम्, उपैति, दिव्यम् ॥ 8/10

यः (जो योगी) **कविं** (कवि) पुराणं (पुरातन), **अनुशासितारं** (सबके शासक), **अणोः** (सूक्ष्म अणु से) {भी} **अणीयांसं** (अति सूक्ष्म), **सर्वस्य धातारं** (सबको धारण करने वाले), **अचिन्त्यरूपं** (अचित्य रूप वाले), **आदित्यवर्णं** (सूर्य की तरह प्रकाशित), **तमसः** (अंधकार से) **परस्तात्** (परे) {ज्योतिर्लिंग शिव को} **प्रयाणकाले** (कल्पान्तकालीन महामृत्यु के समय) **अचलेन** (अडोल) **मनसा** (मन से), **भक्त्या** (भक्ति भाव से) {और} **योगबलेन** (योगबल से) **युक्तः** (लगा हुआ) **भ्रुवोः** (भृकुटि के) **मध्ये** (बीच में) **एव** (ही) **प्राणं** (मन-बुद्धि रूपी आत्मा को) **सम्यक्** (भली प्रकार) **आवेश्य** (स्थापित करके) **अनुस्मरेत्** (स्मरण करता है), **सः** (वह योगी) **तं** (उस) **दिव्यं** (प्रकाशित) **परं पुरुषं** (परम पुरुष परमात्मा को) **उपैति** (पाता है)।

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि परमपिता परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, प्रकाशमय; परन्तु अनिर्वचनीय अर्थात् ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप हैं।

<u>परमपिता शिव का घर :-</u>

हम जन्म-जन्मांतर जिस परमपिता+परमात्मा को याद करते आए, उपासना करते आए, उनके रहने का स्थान अथवा घर कौन-सा है? गीता में उनके घर का भी जिक्र आया है-

न, तत्, भासयते, सूर्यः, न, शशांकः, न, पावकः,
यत्, गत्वा, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ 15/6

तत् (उस परमपद को) **न सूर्यो** (न सूर्य), **न शशांको** (न चन्द्रमा) {और} **न पावकः** (न अग्नि) **भासयते** (प्रकाशित करती है)। **यत्** (जिस धाम को) **गत्वा** (जाकर) **न निवर्तन्ते** (दुःखी संसार में वापस नहीं लौटते), **तत्** (वह) **मम** (मेरा) **परमं धाम** (परमधाम है)।

इन आँखों से जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह सब भौतिक है। जहाँ-2 तक ये भौतिक वस्तुएँ फैली हुई हैं, जैसे- ग्रह, नक्षत्र, सूरज, चाँद, सितारे आदि सब भौतिक जगत में गिने जाते हैं; परन्तु इससे भी

उपराम एक जगह है, एक घर है, जहाँ भौतिकता का नामोनिशान नहीं। उस घर का नाम है- परमधाम। हम आत्माओं सहित परमपिता परमात्मा शिव भी उस परमधाम के निवासी हैं।

<u>परमपिता शिव का देश :-</u>

परमपिता परमात्मा जब इस मनुष्य लोक में आएँगे तो किस देश में आएँगे और क्यों? उनको मानने का तरीका, उपासना करने की विधि भल भिन्न-2 हों; परन्तु वे तो सभी आत्माओं के पिता हैं। वे जात-पात, धर्म आदि का भेदभाव नहीं करते; इसलिए जिस भी देश में वे आएँगे, उस देश में आने का उनका मूल कारण भी होगा; परन्तु वह मूल कारण क्या है? गीता में वह मूल कारण भी दिया है-

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, <u>भारत</u>,

अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम् ॥ 4/7

भारत (हे भरतवंशी)! **यदा यदा** (जब-जब) ⊠{कलियुग के अन्त में} **धर्मस्य** (धर्म की) **ग्लानिः** (हानि) {और} **अधर्मस्य** (अधर्म की) **अभ्युत्थानं** (वृद्धि) **भवति** (होती है), **तदा** (तब) **अहं** (मैं) **आत्मानं** (स्वयं) **सृजामि** (जन्म लेता हूँ)। {⊠जैन और वैदिक सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार, पापी कलियुग-अंत में ही धर्म की सम्पूर्ण ग्लानि होती है।

इससे यह प्रश्न उठता है कि धर्मों की ग्लानि कहाँ शुरू होती है, जहाँ एक धर्म पलता है, वहाँ या जहाँ अनेक धर्मों के लोग रहते हैं, वहाँ? 2500 वर्ष का इतिहास गवाह है कि आज तक अनेक धर्मों के लोगों ने धर्म के नाम पर ज्यादा हिसा किस देश में हुई है? वह देश और कोई नहीं, बल्कि भारत देश ही है। यही एक ऐसा देश है, जहाँ अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ तथा अनेक मतावलम्बी लोग रहते हैं। धर्म के नाम पर दंगे-फ़साद और खुले आम मौत का बाजार इसी देश में ज्यादा चला है। इसी देश में धर्म के नाम पर खूनी नाहक खेल 2500 वर्ष के लंबे समय से चलता आ रहा है। अगर परमपिता परमात्मा शिव को सभी धर्मों के लोगों के सामने प्रकट होना है तो उन्हें भारत देश में ही आना पड़े।

भारत में ही परमपिता+परमात्मा का आगमन होता है, इसका एक कारण और भी है- परमपिता+परमात्मा परम पवित्र है। उसी पवित्रता के कारण आज पूरी दुनिया उनके आगे नतमस्तक होती है। इस देश की यह खासियत है कि यहाँ पवित्रता को अहम मर्तबा दिया जाता है। यहाँ नारी को, अन्य देशों के मुकाबले, केवल भोग-विलास की मूर्ति ही न मानकर, नारी शक्ति के रूप में सुरक्षा भी करते हैं। यही पवित्रता की मान्यता तथा पवित्रता को पूजने वाला भारत देश, परमपिता परमात्मा को अपने परम पवित्र रूप में प्रगट होने को आकर्षित करता है।

<u>परमपिता शिव का कार्य काल :-</u>

परमपिता परमात्मा की कर्म भूमि तो भारत देश ही है; परन्तु उनके आगमन का समय कौन-सा है? किस समय वे अपने को इस सृष्टि पर प्रकट करते हैं? गीता में उस काल का भी वर्णन किया गया है-

सर्वभूतानि, कौन्तेय, प्रकृतिम्, यान्ति, मामिकाम्,
कल्पक्षये, पुनः, तानि, कल्पादौ, विसृजामि, अहम् ॥ 9/7

कौन्तेय (हे कुन्ती माता पुत्र)! **कल्पक्षये** (कल्पान्तकाल में) **सर्वभूतानि** (सब प्राणी) **मामिकां** (मेरी) **प्रकृति** (निराकारी प्रकृति अर्थात् अव्यक्त ज्योति भाव को) **यान्ति** (पाते हैं) {और} **कल्पादौ** (कल्प के आदि काल से) **अहं** (मैं) **तानि** (उन्हें) **पुनः** (फिर से) **विसृजामि** (सृष्टि के लिए छोड़ देता हूँ)।

जिस तरह से 1 दिन 24 घंटों का होता है, 1 सप्ताह 7 दिनों का होता है, उसी प्रकार 1 कल्प 4 युगों का बना हुआ है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। कल्प का आदि सतयुग और अन्त कलियुग है। कलियुग के अन्त में परमपिता परमात्मा शिव आते हैं, जिनके दिव्य रूप को सभी जीव प्राप्त कर, नए जीवन से कल्प के आदि अर्थात् सतयुग के आदि काल में प्रवेश करते हैं; परन्तु कलियुग के अन्त समय की पहचान क्या है? गीता में उस परिस्थिति की भी पहचान दी गई है, जो उनके आगमन का कारण है- कृपया पृष्ठ-7 का श्लोक 4/7 देखिए।

खास कलियुग अंत में अनेक धर्म और उनकी विभिन्नता के कारण लोग एक-दूसरे से घृणा कर, एक-दूसरे के हत्यारे बन पड़ते हैं; परन्तु सत्य बात तो यह है कि सत्य धर्म के वास्तविक अर्थ को न जानने के कारण अधर्म बढ़ता जा रहा है। यही वह समय है, जिसे पुराने कल्प (चतुर्युगी) का अन्त तथा नए कल्प की शुरुआत कहा गया है। यही वह समय है, जब परमपिता+परमात्मा शिव इस सृष्टि पर आते हैं अर्थात् कल्याणकारी परमपिता+परमात्मा के आगमन का समय है कलियुग का अंत, जबकि सारे संसार में भौतिकवाद से प्रभावित लोग आत्मा-परमात्मा और सृष्टि प्रक्रिया के मतभेद को लेकर और अज्ञानता के अंधकार की महाशिवरात्रि में डूबने लग पड़ते हैं।

परमपिता शिव के गुण :-

परमपिता परमात्मा और आत्मा के भेद, उनके गुणों से पूरी तरह से स्पष्ट होते हैं। आत्मा के गुणों और परमपिता+परमात्मा के गुणों में जमीन-आसमान का अंतर है। इनके गुणों में मुख्य तीन बातों का अंतर है।

अगर्भा/अजन्मा - प्रत्येक आत्मा जन्म-मरण के चक्र में बँधी हुई है; परन्तु परमपिता परमात्मा जन्म-मरण रहित हैं। उनको जन्म देने वाला कोई नहीं, वे अनादि हैं। अनादि अर्थात् जिसका कोई

आदि नहीं है और जिसका कोई आदि नहीं, उसका अन्त भी नहीं। गीता में इस पर कई श्लोक आए हैं-

यः, माम्, अजम्, अनादिम्, च, वेत्ति, लोकमहेश्वरम्,

असंमूढः, स, मर्त्येषु, सर्वपापैः, प्रमुच्यते ॥ 10/3

यः (जो ज्ञानी) **मां** (मुझको) **अजं** (अजन्मा), **अनादि** (अनादि) **च** (और) **लोकमहेश्वरं** (तीनों लोकों का महान ईश्वर) **वेत्ति** (जानता है), **स** (वह) **मर्त्येषु** (मनुष्यों में) **असंमूढः** (मोहरहित हुआ), **सर्वपापैः** (सब पापों से) **प्रमुच्यते** (पूर्ण मुक्त हो जाता है)।

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्,

प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया ॥ 4/6

अव्ययात्मा (अक्षय अर्थात् जिसकी शक्ति का कभी व्यय न हो, वह मैं) **अजः** (अजन्मा) **सन्** (होते हुए) **अपि** (भी) {और} **भूतानां** (प्राणियों का) **ईश्वरः** (शासनकर्ता) **सन्** (होते हुए) **अपि** (भी), **स्वां** (अपने) **प्रकृति** (स्वभाव का) **अधिष्ठाय** (आधार लेकर), **आत्ममायया** (आत्मशक्ति से) **सम्भवामि** (प्रगट-प्रत्यक्ष होता हूँ)।

{परमपिता शिव के परकाया प्रवेश के प्रमाणों के लिए देखिए 'आदीश्वर रहस्य' में 'शिव का दिव्य जन्म' नामक अध्याय-5।} {U TUBE में देखिए 'AIVV'}

जिक्र किए हुए इन श्लोकों से परमपिता सदाशिव के बारे में यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि उनका भौतिक गर्भ में प्रवेश होकर जन्म नहीं होता, वे अजन्मा हैं; परन्तु तमाम दुनिया के कल्याण हेतु उनका इस सृष्टि पर दिव्य जन्म होता है। अब दिव्य जन्म क्या है- इस पर हम विस्तार से समझेंगे; लेकिन अभी नहीं। इसके पहले कुछ और बातें समझना बेहद ज़रूरी हैं।

अकर्ता - परमपिता परमात्मा और आत्मा में यह एक और विशेष अन्तर है। आत्मा के द्वारा किए गए हर कर्म में आत्मा का होना निश्चित है। हर कर्म में आत्मा अपने आपको प्रत्यक्ष करती है और उस पर अपना हक जताती है, जबकि परमपिता परमात्मा सब करते हुए भी अकर्ता है। गीता में इस बात को इन श्लोकों से स्पष्ट किया गया है-

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः,

तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम् ॥ 4/13

{कल्प पहले भी} **मया** (मैंने) **गुणकर्मविभागशः** (गुण और कर्मों के भेद के अनुसार) **चातुर्वर्ण्यं** (ब्राह्मण अर्थात् देवता, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णों के समूह को) **सृष्टम्** (रचा था)। **तस्य** (उसका) **कर्तारम्** (कर्ता) {होने पर} **अपि** (भी) **अकर्तारम्** (अकर्ता) {और} **अव्ययम्** (क्षयरहित) **माम्** (मुझको) **विद्धि** (तू जान ले)।

न, च, माम्, तानि, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनंजय,

उदासीनवत्, आसीनम्, असक्तम्, तेषु, कर्मसु ॥ 9/9

च (और) **धनंजय** (हे ज्ञानधनजेता)! **तानि** (वे) **कर्माणि** (कर्म) **मां** (मुझको) **न निबध्नन्ति** (नहीं बाँधते); {क्योंकि मैं} **तेषु** (उन) **कर्मसु** (कर्मों में) **उदासीनवत्** (उदासीन के समान) **असक्तं** (अनासक्त) **आसीनम्** (रहता हूँ)।

परमपिता परमात्मा का अकर्ता के रूप में यह गुण सबसे अति विशेष गुण पर आधारित है। वह गुण है- "अभोक्ता"।

अभोक्ता - आत्मा अपनी अनेक इन्द्रियों द्वारा भोग भोगती है, अनेक इन्द्रियों में आसक्त हो रस भोगती है, जबकि परमपिता सदाशिव ज्योति को अपनी इन्द्रियाँ ही नहीं तो भोग भोगने की बात ही नहीं (दिव्य जन्म याने परकाया प्रवेश द्वारा जो इन्द्रियों का प्रयोग परमपिता सदाशिव ज्योति करते हैं, उसमें वे आसक्त नहीं होते।) गीता में इसका भी प्रमाण आया है-

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा,

इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, स, बध्यते ॥ 4/14

न माम् (न मुझको) **कर्माणि** (कर्मों का) **लिम्पन्ति** (लेप लगता है), **न मे** (न मुझे) **कर्मफले** (कर्मों के फल में) **स्पृहा** (इच्छा है)। **इति** (इस रूप में) **यः** (जो) **माम्** (मुझको) **अभिजानाति** (सर्वथा जान लेता है), **सः** (वह) **कर्मभिः** (लौकिक कर्मों में) **न बध्यते** (नहीं बँधता)।

यही अभोक्ता का गुण परमपिता सदाशिव ज्योति को भोगी आत्माओं से अलग स्थान देता है और यही गुण उनको परम पवित्र भी साबित करता है। निराकारी परमपिता शिव ज्योति के स्वरूप को कुछ हद तक तो हम अब समझ पाए; परन्तु क्या तमाम दुनिया इस बात को मानती है? गीता के ज्ञान द्वारा हमें उनके निराकारी स्वरूप की पहचान तो हुई; परन्तु क्या तमाम दुनिया इस वर्तमान प्रचलित ज्ञान के आधार पर उनको भगवान मानेगी? इसी पर हमने सबसे बड़ी भूल की है और यही भूल आज हमारे पतन का मूल कारण है कि हमने गीता का भगवान 16 कला संपूर्ण साकार कृष्ण देवता को मान रखा है और कलाहीन कलियुगी नर को 16 कला संपूर्ण नारायण बनाने वाले कलातीत कल्याण कल्पांतकारी निराकारी स्टेज वाले शिव बाप को सर्वथा उड़ा दिया है।

धर्म और अधर्म

धर्म-अधर्म की परिभाषा :-

सम्पूर्ण सृष्टि में, सम्पूर्ण भौतिक पहलुओं से मनुष्यों ने भौतिक जगत में अहम तरक्की की है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश- इन प्रकृति के पाँचों तत्वों का विश्लेषण

कर, अपने भौतिक जीवन को सुविधाजनक बनाया है; परन्तु क्या अपनी अनंत भौतिक इच्छाओं को पूर्ण करने की कोशिश को ही जीवन कहा जाता है? क्या इसे ही श्रेष्ठ मनुष्य योनि की प्रगति कहेंगे? इच्छाओं को तृप्त करने के इन प्रयासों में, हमारा उत्थान हुआ या पतन?

"नर चाहत है कुछ और होवत है कुछ और" वास्तव में सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्यों ने जो-2 मार्ग अपनाए, वही उनके उत्तरोत्तर पतन के मूल कारण हैं। इन मार्गों को ही धर्म के नाम पर अधर्म कहा जाता है। धर्म अर्थात् धर+म अर्थात् मन में धारण करना। मन की स्थिरता को धर्म कहा जाता है और मन की चंचलता अर्थात् मन के भटकने को अधर्म कहा जाता है। शास्त्रों में आया है "मनरेव आत्मा...।" वास्तव में, मन-बुद्धि को ही आत्मा कहा जा सकता है। मन की तुलना शास्त्रों में अश्व अर्थात् घोड़े से की है। मन रूपी घोड़ा बहुत चंचल होता है- पल में यहाँ, तो दूसरे पल में वहाँ। यदि मन रूपी घोड़े पर बुद्धि रूपी लगाम रहे तो आत्मा का धर्म अर्थात् स्वधर्म कहा जाएगा। अब इस मन रूपी घोड़े पर बुद्धि रूपी लगाम न होने से, आत्मा अपने स्वधर्म को भूल परधर्म को अपना रही है। यही स्वधर्म और देह का परधर्म क्रमशः आत्मा के उत्थान और पतन के मूल कारण हैं।

घोर अधर्म का मूल :-

धर्म और अधर्म सिर्फ आत्मा तक ही सीमित नहीं है; परन्तु आज एक सामाजिक मुद्दा बन चुका है। आज दुनिया में अनेकानेक धर्म पनप रहे हैं और हरेक धर्म एक-दूसरे की धारणाओं को काटकर अपने आपको श्रेष्ठ साबित कर रहा है। हरेक धर्म की धारणाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। मन जब अनेक प्रकार के मत-मतांतरों में अर्थात् अनेक प्रकार की जिज्ञासाओं और इच्छाओं के नियंत्रण में जाए, तो अधर्म कहा जाता है। अब धर्म और अधर्म के इस स्वरूप में मनुष्य ने ऐसी कौन-सी भूल की है, जिससे पूरी दुनिया की दुर्गति और पतन इतनी तेजी से हो रहा है? ज़रूर वह भूल हमारे मन को केन्द्रित करने के बजाए अनेकों में भरमाती होगी; परन्तु वह भूल क्या है? वह भूल है- भगवान को सर्वव्यापी मानना। यही अधर्म का मूल बीज है, जिसकी चपेट में सारे धर्म के लोग आ रहे हैं। यह सिर्फ हिदुओं की बात नहीं है; परन्तु आज सभी धर्म वाले इसी सर्व व्यापकता के प्रभाव में हैं। शुरुआत में मुसलमानों का मानना था कि "खुदा अर्श में रहता है, फर्श में नहीं "; परन्तु आज वे भी कहने लगे कि खुदा जर्रे-2 में समाया हुआ है। ऐसा समझना ही सबसे बड़ा अधर्म है। भगवान को सर्वव्यापी समझने से हमारा मन सर्व में बँट जाता है। इससे मन की शक्ति सिर्फ क्षीण ही नहीं होती, अपितु दुर्गति में इतनी डूब जाती है कि मनुष्य चाहकर भी दुर्गति के दलदल से उठ नहीं सकता।

भगवान अगर सर्वव्यापी होता, तो क्या आज दुनिया की यह हालत होती! इतना दुःख होता क्या? गरीब लोग अकाल से पीड़ित हो मर रहे हैं। कहीं पर बाढ़ आई या भूकंप आया तो अनेक लोग अकाले मृत्यु को प्राप्त होते हैं। क्या इन सबमें भगवान का वास है? बीड़ी-सिगरेट, माँसाहारियों,

शराबियों में भगवान है? कुत्ते, सुअर, भैंस, गधे, जो गंदगी भरा जीवन जीते हैं- क्या इनमें भगवान है? चैतन्य जीव-आत्माएँ ही नहीं, अपितु अब तो जड़ प्रकृति भी तमोप्रधान बन चुकी है। कहीं भी, कभी भी अतिवृष्टि होती है, खेती बरबाद हो जाती है, अचानक तूफान आते हैं- तो क्या ये सब सर्वव्यापी भगवान की देन है? क्या इन सब बातों में भगवान के वास का प्रमाण है?

सभी ने बचपन में एक कहानी तो सुनी ही होगी लोमड़ी और अंगूर की। अंगूर को पाने के लिए लोमड़ी बहुत प्रयास करती है; परन्तु अंगूर न मिलने पर वह अपने आपको तसल्ली देने हेतु समझती है कि अंगूर खट्टे हैं। ठीक इसी तरह, हमने भी किया। भगवान को पाने के लिए हमने बहुत प्रयास किए; परन्तु हाथ कुछ नहीं आया। तब फिर हताश होकर यह मानने लगे कि भगवान को पाने के लिए कहीं जाने की दरकार नहीं, वरन् वे तो कण-2 में वास करते हैं। अब अंगूर खट्टे थे क्या? नहीं, यह तो किसी जानवर लोमड़ी की सोच थी। वैसे ही भगवान सर्वव्यापी है, यह विचार भी किसी जानवरबुद्धिप्रधान मनुष्य का है, जो ऊँच-ते-ऊँचे एक का मनन-चितन-मंथन तो करते नहीं और इसी मिथ्या एवं झूठे ज्ञान को लोगों से मनवाकर परमपिता+परमात्मा शिव की अवहेलना की है। अगर वे सर्वव्यापी होते और अणु-2 में वास करते, तो गीता में क्यों कहा है- कृपया पृष्ठ-7 का श्लोक 4/7 देखिए।

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे ॥ 4/8

{मैं} **साधूनां** (साधु-सन्तों की) **परित्राणाय** (रक्षा के लिए), **दुष्कृतां** (दुराचारियों के) **विनाशाय** (विनाश के लिए) **च** (और) **धर्मसंस्थापनार्थाय** (धर्म की संपूर्ण स्थापना के लिए) **युगे-युगे** (दो युगों- कलियुग और सतयुग-के संधिकाल में) **सम्भवामि** (जन्म लेता हूँ)।

कहा है- जब-2 धर्मों की ग्लानि होती है, तब-2 आता हूँ। 'आता हूँ' का मतलब ज़रूर कहीं किसी स्थान से इस सृष्टि पर आएँगे। तो इस सृष्टि में व्यापक नहीं है ना! सर्वव्यापी के इस झूठे एवं मिथ्या ज्ञान से ही सृष्टि पर अधर्म तेजी से फैला है। भगवान को सर्वव्यापी मानना ही सबसे बड़ा अधर्म है और यही अधर्म जब काले बादल समान छाकर घोर अंधियारा फैलाता है, तब इस सृष्टि पर ज्ञान-सूर्य समान सभी ज्ञानरहित अधर्मों का विनाश कर, एक धर्म की स्थापना करने अर्थात् हर एक मनुष्य की बुद्धि में भगवान के एकव्यापी स्वरूप को समझाकर, धर्म के ज्ञान का सवेरा लाने के लिए भगवान आते हैं। भगवान को अगर सर्वव्यापी समझना झूठा धर्म अर्थात् अधर्म है तो उन्हें एकव्यापी समझना ही सच्चा धर्म होगा, जिससे कि दुनिया के तमाम लोग, तमाम धर्म वाले, जाति वाले, जिन्होंने भगवान को अलग-2 रूपों में पूजा है, जिन्हें प्राप्त करने हेतु यहाँ-वहाँ भटके हैं और मन को अनेकों में भटकाया है, उनके मन को एक स्थिर स्थान तथा व्यक्तित्व प्राप्त हो; इसलिए तो कहते हैं- सबका मालिक एक है। यही अशान्त मन को शान्त करने का एकमेव रास्ता है, जो स्वयं भगवान एक में व्यापक होकर समझाते हैं

और जहाँ अन्तत: एक में शान्ति है, वहाँ सुख तो आप ही आ जाता है अर्थात् भगवान के एकव्यापी स्वरूप को जानने, समझने और समझकर उनके बताए रास्ते पर चलने से ही शान्ति और सुख के हम अधिकारी बनते हैं।

अधर्म से गीता का खण्डन :-

परन्तु, यह सर्वव्यापी की बात आई कहाँ से? इस महान भूल की जड़ क्या है? पुराने-ते-पुराना धर्म है- 'सनातन'। आज वह सनातन धर्म बिगड़कर हिन्दू कहलाया जाता है। हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ अनेकानेक हैं। आज उस एक गीता की ही कितनी टीकाएँ हैं! करीब 108 के ऊपर टीकाएँ हैं और हरेक टीका एक-दूसरे को काटती हैं। अब इसमें से सच्ची कौन-सी समझें? शंकराचार्य की गीता अद्वैत रूप से आत्मा को ही परमपिता परमात्मा मानती है, तो मा०००० धवाचार्य की गीता द्वैत रूप से आत्मा और परमपिता परमात्मा को भिन्न शक्ति मानती है। कहीं किसी ने आत्मा का स्वरूप अंगुष्ठ मिसल बताया है, तो कहीं किसी ने कुछ और। इससे हर एक का मन भटक गया। आखिरकार, आज ऐसा वक्त आया कि हम हमारे सर्वशास्त्र शिरोमणि धर्मग्रंथ गीता को महत्व ही नहीं देते, नहीं तो इतनी सारी टीकाएँ करने का मतलब क्या है! कोर्ट में गीता की कसम खाकर लोग झूठ बोलते रहे। हिन्दू धर्मग्रन्थ की इतनी दुर्गति हुई तो हिन्दू धर्म की नहीं होगी क्या? हिन्दुओं की भी दुर्गति हुई। सबसे अहम बात है कि हिन्दू धर्म के धर्मपिता कौन हैं? जैसे मुस्लिम धर्म की नींव रखने वाले मुहम्मद पैगंबर थे, क्रिश्चियन धर्म की स्थापना करने वाले क्राइस्ट थे, वैसे ही हिन्दू धर्म की स्थापना किसने की? यह किसी को भी ज्ञात नहीं। न धर्मपिता का पता है और न ही किसी एक धर्मग्रन्थ में आस्था है, तो कौन इस धर्म पर विश्वास रखेगा! इसलिए फिर औरों के धर्मों को अपनाते हैं। हिन्दू लोग ही दूसरे धर्मों में कन्वर्ट होते हैं। यह भी अधर्म है और मानो या ना मानो, इन अधर्मों का मूल कारण है- "वर्तमान कृष्ण भगवान लिखी हुई गीता"। आज गीता का जो दुनिया वाले दुरुपयोग कर रहे हैं, अनेक टीकाएँ कर रहे हैं, इससे गीता का अस्तित्व ही मिट गया है। गीता सिर्फ धर्मग्रन्थ नहीं, अपितु हम सबकी माँ भी हैं। गीता को रचने वाले स्वयं परमपिता+परमात्मा गीता-पति भगवान शिव हैं और हम उन दोनों की सन्तान हैं। गीता को जबकि भगवान ने रचा है, तो उसका अर्थ भी भगवान ही बताएँगे; परन्तु हम बच्चों ने अपनी माँ गीता पर इतनी टीकाएँ की हैं, जो कि बहुत बड़ी निंदा की बात है। क्या कोई टीका (रचना) रचयिता और उसकी सृष्टि रचना के आदि-मध्य-अंत का परिचय दे सकती है? नहीं न! तो हम बच्चे अपनी माँ तथा पिता का परिचय बिना जाने कैसे दे सकते हैं! गीता में बताए भगवान के अर्थ का अनर्थ कर, हमने हमारी गीता माँ को खण्डित कर दिया। बहुत बड़ा जुल्म कर दिया। यह अधर्म की प्रधानता हो गई। इससे बड़ा अधर्म कुछ हो नहीं सकता। गीता माँ के महत्व को न समझने के कारण आज भारत देश सहित, पूरी दुनिया में नास्तिकवाद बढ़ता जा रहा है। परमपिता परमात्मा का असली स्वरूप तो वैसे भी

नहीं पहचानते और फिर गीता माँ सहित, सभी कन्या-माताओं पर अत्याचार भी करते हैं। यही एकमेव कारण है कि कन्या-माताओं को कोई माँ-बहन नहीं समझते। जब माताओं की माता, गीता माँ ही खण्डित हो गई, तो अन्य कन्या-माताओं का क्या होगा! इसको ही अधर्म कहा जाता है।

जैसे हर बच्चे को अपने पिता का परिचय माँ से मिलता है, उसी प्रकार सभी आत्माओं को परमपिता शिव परमात्मा का परिचय भी अपनी माँ गीता से मिलता है; परन्तु आज गीता की अनेक टीकाएँ कर, गीता को खण्डित किया गया है। अब खण्डित गीता सच्चे परमपिता परमात्मा का परिचय कैसे देगी? इसलिए यह अधर्म मिटाकर, सच्ची अखण्ड गीता की स्थापना कर, उस गीता के सहयोग से श्रेष्ठ धर्म की स्थापना करने के लिए परमपिता परमात्मा शिव एकव्यापी रूप में इस सृष्टि पर प्रकट होते हैं।

अधर्म से महाविनाश :-

धर्म-अधर्म की बात तो उदाहरण सहित हमारे सामने स्पष्ट है; परन्तु शाश्वत धर्म के बाद अधर्म का यह खेल युग-युग से, जन्म-जन्मांतर से चलता आ रहा है। अब तो हर एक मनुष्य अधर्म की वृत्ति को इतना पक्का कर चुका है कि धर्म की बात उसकी बुद्धि में बैठती ही नहीं और जिनकी बुद्धि में बैठती है, उनमें से ज्यादातर लोग ऐसे भी हैं, जो सच्चे एकव्यापी भगवान को समझने में अधर्म समझते हैं। यहीं पर तीन हिस्से हो गए। एक वह, जो धर्म की बात को मानते ही नहीं और अधर्म की वृत्ति में ही अपना जीवन पनपाते हैं, दूसरे वह जो धर्म को तो मानते हैं; परन्तु सच्चे एकव्यापी भगवान को समझने में भूल करते हैं अर्थात् झूठे को भगवान बनाकर सच्चे को छोड़ देते हैं और तीसरे वह, जो पूरी तरह से सच्चे एकव्यापी भगवान को समझकर, धर्म का पालन करते हैं। इन्हीं को महाभारत में यादव, कौरव और पांडव के रूप में दिखाते हैं। आज यही तीनों प्रकार की आत्माएँ धर्म और अधर्म के स्वरूप से महाभारत युद्ध लड़ेंगी, जो कि महाविनाश का मूल कारण होगा। यह तीनों प्रकार की आत्माएँ दो गुटों में बँट जाएँगी। एक गुट- गीता को खण्डित करने वालों का अर्थात् यादव और कौरवों का तथा दूसरा गुट- सच्ची गीता और सच्चे परमपिता परमात्मा शिव के बताए रास्ते पर चलने वाले पांडवों का। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सच्चाई की ओर से आवाज़ उठाने वाले अर्थात् सच्चे परमपिता परमात्मा शिव के एकव्यापी स्वरूप को समझकर उनके रास्ते पर चल, झूठ से टक्कर लेने वाले पांडवों की संख्या बहुत थोड़ी होगी और अधर्म को वृद्धि दिलाते हुए, स्वयं को भगवान मानकर, भगवान को सर्वव्यापी की उपाधि देकर, झूठे शास्त्रों पर अपना वर्चस्व बनाकर, सदैव 'अक्षर' सत्य को छिपाने वाले, अज्ञान अंधकार फैलाने वाले यादव और कौरवों की संख्या अधिकतम होगी; परन्तु आखरीन जीत तो सत्य की ही होगी। भल संख्या में कम हों; परन्तु पांडवों के साथ स्वयं सत्य परमपिता परमात्मा शिव एकव्यापी स्वरूप में होते हैं; इसलिए जीत निश्चित है; क्योंकि सत्यम् शिवम् सुंदरम् गाया जाता है।

अब सबसे बड़ा सवाल यह है कि उस सत्यम् शिवम् सुंदरम् को अर्थात् एकव्यापी भगवान को पहचानें कैसे? उन्हें समझें कैसे ?

परमपिता परमात्मा का एकव्यापी स्वरुप

परमपिता परमात्मा का साकार अवतरण:-

परमपिता परमात्मा कौन हैं? उनका एकव्यापी स्वरूप क्या है? उनको हम कैसे प्राप्त करें?- इन सब प्रश्नों का जवाब देगा कौन? गीता में इस पर एक महान श्लोक आया है-

न, मे, विदुः, सुरगणाः, प्रभवम्, न, महर्षयः,
अहम्, आदिः, हि, देवानाम्, महर्षीणाम्, च, सर्वशः ॥ 10/2

मे (मेरे) **प्रभवं** (उत्कृष्ट जन्म को) **न सुरगणाः** (न सतयुगी देवगण) {और} **न महर्षयः** (न द्वापरयुगी महान् ऋषिजन) {ही} **विदुः** (जानते हैं); **हि** (क्योंकि) **देवानां** (देवताओं) **च** (और) **महर्षीणां** (महर्षियों का) **सर्वशः** (सब प्रकार से) **आदिः** (आदि पुरुष) **अहम्** (मैं {ही} हूँ)। {यहाँ 'ब्रह्मर्षि' शब्द नहीं आया है; क्योंकि वे पु. संगमयुगी ब्राह्मण डायरैक्ट ब्रह्मापुत्र हैं।}

न कोई देवता, न मनुष्य और न ही कोई महर्षि परमपिता परमात्मा का परिचय दे सकते हैं। जिस तरह से स्वयं का परिचय स्वयं से अच्छा और सच्चा कोई दे नहीं सकता, उसी प्रकार परमपिता परमात्मा का सच्चा परिचय भी उनके बिना कोई दे नहीं सकता; इसलिए वे ज्योतिर्बिंदु सदा शिव ज्योति स्वयं इस सृष्टि पर आते हैं; परन्तु वे इस सृष्टि पर आकर करते क्या हैं, जो इतना उनका नाम बाला है? ऐसा वे क्या-2 करते हैं, जो तमाम दुनिया उनके आगे नतमस्तक होती है? दुनिया की कोई भी आत्मा ऐसा कार्य नहीं कर पाती, जो वे करके दिखाते हैं। परमपिता परमात्मा पतित, तामसिक, पुरानी, भ्रष्टाचारी कलियुगी दुनिया का विनाश कर, घोर अधर्म का नामोनिशान मिटाकर, पावन, सतोप्रधान, नई दुनिया सतयुग की स्थापना करते हैं।

अनेकों में मन को लगाकर, अनेकों के संकल्पों के प्रभाव में आकर, आज हम पतित बन पड़े हैं। इसलिए गीता में खास कर दो शब्द आए हैं-

"मन्मना भव" अर्थात् मेरे मन के संकल्पों में समा जाओ; और
"मद्याजी भव" अर्थात् तू अपने समस्त कर्मों को मेरे लिए यजन कर।

इसी कारण परमपिता परमात्मा एकव्यापी स्वरूप में आते हैं, ताकि सबका मन एक में लगे और एक से ही प्रभावित हों। गीता में भी आया है-

मया, ततम्, इदम्, सर्वम्, जगत्, अव्यक्तमूर्तिना,
मत्स्थानि, सर्वभूतानि, न, च, अहम्, तेषु, अवस्थितः ॥ 9/4

मया (मेरे) **अव्यक्तमूर्तिना** (अति सूक्ष्म होने से, प्रगट न होने वाले निराकारी ज्योतिर्बिंदु की विस्तारित लिंगमूर्ति के द्वारा) **इदं** (यह) **सर्वं** (सारा) **जगत्** (जगत्) {सूक्ष्म बीज से, वृक्ष की भाँति} **ततम्** (विस्तृत हुआ है)। {अतः} **सर्वभूतानि** (सभी प्राणी) **मत्स्थानि** (मुझ {अव्यक्त बीज रूप} में स्थित हैं); **च** {किन्तु} **अहं** (मैं) **तेषु** (उनमें) **न अवस्थितः** (स्थित नहीं हूँ)।

इससे यह बात पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है कि परमपिता परमात्मा शिव की अव्यक्त मूर्ति ज्योतिर्लिंग द्वारा ही यह जग विस्तार को प्राप्त हुआ है। लिंग मूर्ति का संस्कृत में खास 'अव्यक्त' शब्द शिव को संबोधित करता है अर्थात् 'अव्यक्त भी और मूर्ति भी' का मतलब ही है- शिव परमपिता+हीरो पार्टधारी परमात्मा का एकव्यापी स्वरूप, जो व्यक्त होते हुए भी मन-बुद्धि से अव्यक्त है। परमपिता शिव स्वयं भौतिकता से परे की शक्ति है, तो फिर समस्त भौतिक जगत के विस्तार के कारण कैसे हो सकते हैं? इसलिए शिव परमपिता का परमात्मा सहित उनके एकव्यापी स्वरूप को समझना बेहद ज़रूरी है अर्थात् अव्यक्त परमपिता+परमात्मा शिव को उनके एकव्यापी स्वरूप में समझना है और वह हाथ-पाँव-नाक-कान आदि से रहित लिंग-मूर्ति भी साकार स्वरूप से समस्त जीवों के विस्तार का मूल कारण है अर्थात् हर प्रकार से सारी मनुष्य सृष्टि के लिए साकार बीज स्वरूप में पिता अर्थात् प्रजापिता (आदम/ऐडम/अर्जुन) है; इसलिए गीता में खासकर एक श्लोक आया है, जो इसे साबित करता है-

ऊर्ध्वमूलम्, अधःशाखम्, अश्वत्थम्, प्राहुः, अव्ययम्,
छन्दांसि, यस्य, पर्णानि, यः, तम्, वेद, स, वेदवित्॥ 15/1

ऊर्ध्वमूलं (मानवीय सृष्टि के बीज प्रजापिता ब्रह्मा से उत्पन्न ब्राह्मण धर्म की ऊर्ध्वरेता बनने वाली जड़ों वाले), **अधःशाखम्** (अधोमुखी ब्रह्मा की पतनोन्मुखी अनेकानेक धर्मों की शाखाओं वाले) {तथा} **छन्दांसि** (वेदादि) **यस्य** (जिसके) **पर्णानि** (पत्ते हैं), {ऐसे} **अश्वत्थं** (चिरकाल तक स्थित रहने वाले सृष्टि रूपी अश्वत्थ वृक्ष को) {ऋषियों ने} **अव्ययं** (अविनाशी) **प्राहुः** (बताया है)। **यः** (जो) **तं** (उसे) **वेद** (जानता है), **सः** (वह) **वेदवित्** (वेदों का ज्ञाता है)।

यह श्लोक मनुष्य सृष्टि रूपी वृक्ष का परिचय देता है, जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं और शाखाएँ नीचे की ओर; परन्तु इस वृक्ष की उत्पत्ति हुई कहाँ से? उस बीज से, जिससे मनुष्य सृष्टि की उत्पत्ति हुई। जिस बीज द्वारा परमपिता+परमात्मा शिव एकव्यापी साकार स्वरूप में प्रत्यक्ष होते हैं, वह बीज और कोई नहीं, अपितु वही अव्यक्त मूर्ति प्रजापिता/प्रजापति है और उस अव्यक्त मूर्ति द्वारा ही हम परमपिता परमात्मा शिव से जुड़ सकते हैं; इसलिए गीता में आया है- कृपया पृष्ठ-8 का श्लोक 9/7 देखिए।

प्रकृति का अर्थ ही है, 5 सूक्ष्म तत्वों का बना हुआ प्राकृतिक शरीर। तो श्लोकानुसार अन्त समय सभी बीजरूप भूत परमपिता परमात्मा शिव की मूर्तिमान दैहिक बीजरूप शंकर की प्रकृति में लीन

होते हैं अर्थात् अपनी तन, मन, बुद्धि तथा कर्मेन्द्रियों की ताकत, सब-कुछ परमपिता परमात्मा शिव को, एकव्यापी साकारी सो आकारी सो निराकारी स्वरूप द्वारा स्वाहा करते हैं। इससे ही मन को स्थिरता प्राप्त होती है, इससे ही मन शान्त भी होता है और शान्त मन को सुख प्राप्त होता ही है।

परमपिता परमात्मा का साकार में आना ज़रूरी :-

प्रत्येक मनुष्य-आत्मा देह को धारण करती है और देह द्वारा सुख और दुःख तथा सभी प्रकार की चीज़ों को भोगती है। जन्म-जन्मांतर देह को धारण करते-2 तथा उन देहों से भोग भोगते, प्रत्येक आत्मा अपने अस्तित्व को भूल, अपने को देह ही समझ बैठी है। इस तरह देह में आसक्त होकर हमने जन्म-जन्मांतर अपना जीवन बिताया है। अब जबकि सच्चाई बताने परमपिता सदाशिव ज्योति इस सृष्टि पर आते हैं तो, वे हम साकारी देहधारियों से मिलेंगे कैसे? हमारे संबंध में कैसे आएँगे? संबंध का अर्थ ही है- सम्पूर्ण और समान बँधन। तो आत्मा और परमपिता+परमात्मा को समान रूप से बँधना पड़े। अब देह में आसक्त आत्मा स्वयं अव्यक्त तो बन नहीं सकती अर्थात् मानव सृष्टि बीज अर्जुन/आदम की आत्मा स्वयं से साकारी से निराकारी नहीं बन सकती; इसलिए फिर शिव को साकार में आना पड़ता है अर्थात् अव्यक्त ज्योति बिन्दु शिव को उसी व्यक्त मूर्ति में मुकर्रर रूप से आना पड़ता है, ताकि हम आत्माओं से वे संबंध जोड़ सकें। वे व्यक्त अर्थात् साकार द्वारा संबंध जोड़, हम आत्माओं का उद्धार करते हैं।

परन्तु, क्या हम आत्माएँ अव्यक्त परमपिता+परमात्मा शिव को सिर्फ निराकार स्वरूप में याद नहीं कर सकतीं? क्या हम उनसे सीधा मिलन नहीं मना सकतीं? इसका जवाब देते हुए गीता में कुछ श्लोक आए हैं-

मयि, आवेश्य, मनः, ये, माम्, नित्ययुक्ता, उपासते,
श्रद्धया, परया, उपेताः, ते, मे, युक्ततमा, मताः ॥ 12/2

ये (जो) **मयि** (मुझमें) **मनः** (मन को) **आवेश्य** (स्थिर करके) **नित्ययुक्ताः** (सदा योगयुक्त हुए), **परया** (परम) **श्रद्धया** (श्रद्धा से) **उपेताः** (भरकर) **मां** (मुझ साकार शिवशंकर स्वरूप को) **उपासते** (याद करते हैं), **ते** (वे) **मे** (मेरे) **युक्ततमाः** (सब योगियों में श्रेष्ठतम) **मताः** (माने गए हैं);

क्लेशः, अधिकतरः, तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्,
अव्यक्ता, हि, गतिः, दुःखम्, देहवद्भिः, अवाप्यते ॥ 12/5

अव्यक्तासक्तचेतसां (अव्यक्त ज्योतिबिदु स्वरूप में आसक्त हुए चित्त वाले) **तेषां** (उन योगियों को) **क्लेशः** (कठिनाई) **अधिकतरः** (अधिक होती है); **हि** (क्योंकि) **देहवद्भिः** (देहधारियों के द्वारा) **अव्यक्ता** (निराकारी) **गतिः** (गति अर्थात् स्थिति) **दुःखं** (दुःखपूर्वक) **अवाप्यते** (प्राप्त होती है);

इन श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि निराकार परमपिता शिव को अव्यक्त रूप में पूर्णतः प्राप्त करना अत्यन्त कठिन तथा दुःख भरा है; परन्तु परमपिता परमात्मा की नज़र में तो वह उत्तम योगी है, जो साकार में निराकार देखता है और उस एक साकार द्वारा ही निराकार को ईश्वरीय ज्ञान से पहचानकर, उसे समझता है।

परन्तु, वह साकार स्वरूप है कौन? उसे पहचानेंगे कैसे? इसे समझना ही सबसे अहम है। धर्म-अधर्म की मूल बात भी इसी पर आधारित है। सच्चे साकार स्वरूप को पहचानना, मानना और तदनुसार चलना ही धर्म है तथा झूठे को परमपिता परमात्मा का स्वरूप समझना घोर अधर्म है। धर्म और अधर्म में यही सबसे बड़ा और महान अन्तर है। इसी पर सभी आत्माओं की सद्गति तथा दुर्गति निर्भर है।

परमपिता परमात्मा शिव साकार में आते कैसे हैं? गीता में इस पर एक श्लोक आया है, जो उनके अवतरण विधि को स्पष्ट करता है-

भक्त्या, तु, अनन्यया, शक्य, अहम्, एवंविधः, अर्जुन,

ज्ञातुम्, द्रष्टुम्, च, तत्त्वेन, प्रवेष्टुम्, च, परंतप ॥ 11/54

तु (किंतु) **परंतप** (कामादिक शत्रुओं को तपाने वाले) **अर्जुन** (हे अर्जुन)! **अनन्यया** (अव्यभिचारी) **भक्त्या** (भक्ति भाव के द्वारा) **अहं** (मैं) **एवंविधः** (इस भाँति सम्पूर्ण रूप में) **ज्ञातुं** (जानने-पहचानने), **द्रष्टुं** (साक्षात्कार करने) **च** (और) **तत्त्वेन** (तत्वपूर्वक) {गहराई तक} **प्रवेष्टुं** (प्रवेश करने के) **शक्यः** (योग्य हूँ)। {तात्पर्य है कि अव्यभिचारी याद से ही परमात्मा की पूरी पहचान होती है।}

इससे यह स्पष्ट होता है कि परमपिता शिव साकार सृष्टि के बीज बाबा आदम/अर्जुन रथ में प्रवेश कर जानने और देखने योग्य हैं। इसे ही *दिव्य जन्म* कहा जाता है। इसी से साबित होता है कि भगवान सदा अनासक्त सूर्य समान भौतिकता में कभी नहीं बँधता। भौतिकता में बँधने का नतीजा है कि आत्मा भौतिक जन्म व मरण के चक्कर में आती है; परन्तु परमपिता शिव के लिए यह बात लागू नहीं होती। वे तो प्रवेश कर अलौकिक जन्म लेते हैं, न कि भौतिक गर्भ-जन्म। इसी जन्म को दिव्य जन्म के रूप में गीता में वर्णित किया गया है। परमपिता शिव जब अपने साकार स्वरूप में दिव्य प्रवेश कर लोगों के बीच प्रत्यक्ष होते हैं, तब उनका दिव्य जन्म कहा जाता है।

परमपिता परमात्मा का साकार परिचय होना कितना ज़रूरी है, यह तो हमने समझा; परन्तु उस साकार का स्वरूप कौन-सा है? जिस तरह से निराकार ज्योतिबिंदु शिव के नाम, रूप, देश, काल, धाम तथा गुणों का परिचय हमने प्राप्त किया, उसी तरह शिव के साकार स्वरूप का परिचय लेंगे; परन्तु इस बार हम गुणों से शुरू करेंगे, नाम-रूप तक। इसी से हम निराकार ज्ञान-दाता शिव के उस साकार गीता ज्ञानदाता स्वरूप को पहचानेंगे और अब तक की की हुईं हमारी भूलों पर नज़र डालेंगे। आज तक हम

गीता ज्ञानदाता जिसे समझते थे, क्या वह सही था? हमने जिसे भगवान माना था, क्या वह हमारी भूल थी? इन सब प्रश्नों का उत्तर हमें आगे प्राप्त होगा।

परमपिता परमात्मा का साकार में गुण :-

जो गुण निराकार शिव का है, वही गुण हमें निराकार के साकार स्वरूप में उस सम्पूर्ण पुरुषार्थी का भी दिखाई पड़ता है। शिव का स्थायित्व यहीं पर साबित होता है कि अपूर्ण साकार में आने के बावजूद, उनके गुण कभी नहीं बदलते।

अजन्मा - अजन्मा का अर्थ ही है- 'जन्म-मरण रहित'। अगर यह बात हमने कृष्ण के लिए मानी, तो यह साबित ही नहीं होता। कृष्ण का तो जन्म दिखाया जाता है, वह भी भौतिक गर्भ जन्म। कृष्ण को जन्म देने वाले मात-पिता भी दिखाए जाते हैं (देवकी-वसुदेव), तो पालने वाले मात-पिता भी दिखाए जाते हैं (यशोदा-नंद)। सबसे अचरज की बात यह है कि शास्त्रों में कृष्ण की मृत्यु का भी परिचय दिया गया है (किसी बहेलिये के तीर लगने से मृत्यु हुई)। तो हम कृष्ण को अजन्मा कैसे मानें? अमर कैसे मानें?

शास्त्रों में ऐसा कौन है, जिसे खास यह अमरत्व की उपाधि प्राप्त है? वह है- शंकर; परन्तु वास्तव में उस मूर्त रूप शंकर को भी नाथने वाला शिव है, जिसकी यादगार में शिवलिंग दिखाया जाता है। गीता में भी आया है - कृपया पृष्ठ-8 का श्लोक 9/7 देखिए।

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि परमपिता परमात्मा शिव का साकारी सो आकारी सो निराकारी स्वरूप शंकर कैसे अजन्मा कहलाता है। कल्प के अन्त अर्थात् कलियुग अन्त में परमपिता शिव के इस साकारी सो आकारी-निराकारी शंकर स्वरूप में सभी बीजरूप जीव मन-बुद्धि के संकल्पों से निस्संकल्प बिंदु बनकर मिल जाएँगे अर्थात् लीन हो जाएँगे और कल्प के आदि में अर्थात् सतयुग आदि में फिर से उन जीवों को नए रूप से रचते हैं (अर्थात् नए रूप से रचना मेरे मूर्तिमंत शंकर द्वारा होगी)। सभी जीवों का अन्त होने पर भी परमपिता परमात्मा शिव के इस साकारी सो आकारी-निराकारी स्टेज वाले रूप शंकर का अन्त नहीं होता अर्थात् जब फिर से रचने की बात आती है, तो वह साकार स्वरूप ही सृष्टि का आदिकारण बनता है। इस अनंत और अनादि स्वरूप को ही भगवान शिव के साकार स्वरूप का मुख्य गुण कहा गया है। इसमें से कोई भी बात किसी भी आधार से कृष्ण के लिए लागू नहीं होती। कृष्ण का तो जन्म भी देखा गया है तो मृत्यु भी देखी गई; इसलिए तो शास्त्रों में गायन होता है कृष्ण जन्माष्टमी का, जबकि परमपिता शिव परमात्मा के साकार स्वरूप का इस सृष्टि में न तो कोई गर्भ से जन्म होता है और न ही मृत्यु। हालाँकि उस साकार स्वरूप द्वारा परमपिता+परमात्मा शिव की प्रत्यक्षता घोर अज्ञान, अधर्म की अंधियारी रात कलियुग अंत में होती है। इसलिए शिव के साकार

स्वरूप की किसी भी प्रकार की जयन्ती का गायन नहीं होता; परन्तु उस साकार स्वरूप द्वारा शिव की प्रत्यक्षता ''महाशिवरात्रि'' के रूप में गाई जाती है।

अभोक्ता - परमपिता परमात्मा के अनेक गुणों में से यह गुण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यही गुण उनको पतित से पावन की उपाधि भी दिलाता है। परमपिता परमात्मा शिव का अभोक्तापन साबित कैसे होगा? ज़रूर जिस तन में उनका दिव्य अवतरण होता है, उसी तन द्वारा उनको अभोक्ता साबित होना पड़े। आत्मा शरीर द्वारा भोगी कहलाती है, तो परमपिता परमात्मा भी शरीर द्वारा ही अभोगी कहलाएगा।

आत्माएँ दो प्रकार के भोगों को भोगती हैं। एक पुण्य कर्मों का फल और दूसरा पाप कर्मों का फल। पुण्य कर्मों का फल तो सुख होता है और पाप कर्मों का फल दुःख होता है; परन्तु परमपिता परमात्मा इन दोनों प्रकार के भोगों से परे हैं।

सबसे पहले तो हमें यह समझना है कि पाप की शुरुआत होती कहाँ से है ? गीता में इसके बारे में एक श्लोक आया है-

काम, एष, क्रोध, एष, रजोगुणसमुद्भवः,
महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम् ॥ 3/37

रजोगुणसमुद्भवः (रजोगुण से उत्पन्न) **एष काम** (यह काम) **एष क्रोध** (अथवा यह क्रोध) **महाशनः** (बहुत भोग चाहता है) {और} **महापाप्मा** (बड़ा पापी है)। **इह** (इस संसार में) **एनम्** (इसको) **वैरिणं विद्धि** (वैरी समझ)।

यह कामवासना ही सभी विकारों का मूल कारण है और इन्हीं विकारों से पाप बनता है और आत्माएँ पापी बनती हैं। अन्य विकारों को रोकना फिर भी सहज है; परन्तु कामवासना को अपने वश में रखना अत्यन्त कठिन है; इसलिए तो पाप बढ़ता जा रहा है। गीता में भी आया है-

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ,
पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ 3/41

भरतर्षभ (हे भरतवंश में श्रेष्ठ)! **तस्मात्** (इसलिए) **त्वं** (तू) **आदौ** (पहले) **इन्द्रियाणि** (इंद्रियों को) **नियम्य** (नियंत्रित करके), **ज्ञान+विज्ञाननाशनं** (ज्ञान और योग का नाश करने वाले) **एनं** (इस) **पाप्मानं** (पापी काम-विकार को) **हि प्रजहि** (अवश्य त्याग दे)।

अब ऐसा कौन-सा देवता है, जिसका गायन काम-विकार को नाश करने वाले के रूप में होता है? कामदेव को किसने भस्म किया? शास्त्रों के अनुसार सिर्फ शंकर ही ऐसा देवता है, जिसने काम-विकार को भस्म किया है। अन्य किसी भी देवता के लिए यह गायन नहीं है। कृष्ण के बारे में भी कभी नहीं कहा गया कि कृष्ण ने काम-विकार को भस्म किया; इसलिए देवताओं के हस्त, नयन, पद आदि

की पूजा होती है; परन्तु केवल शिव+शंकर की ही लिंग रूप में पूजा होती है; इसलिए शिव लिंग कहा जाता है, जो कि पवित्रता का स्वरूप है। 'लिंग' शब्द पुरुष का सूचक है। यही शिव के अपने साकार स्वरूप द्वारा अभोक्तापन का प्रमाण है; इसलिए हम पापी और पतित आत्माओं का उद्धार भी उस पाप को भस्म करने वाले शिव+शंकर के संग के रंग से ही होगा। इसी शिव+शंकर को पतित-पावन कहा जाता है। अन्य कोई भी देवता यह पद नहीं पाते; क्योंकि यह सिर्फ परमपिता+परमात्मा का कार्य है। ऐसा विरला और निराला पार्ट और कोई नहीं बजा पाता, कृष्ण भी नहीं। अब जब सुख भोगने की बात आती है तो कृष्ण को तो स्वर्ग में अर्थात् वैकुंठ में दिखाया जाता है। इससे यह साबित होता है कि कृष्ण भी सुख भोगता है, जबकि परमपिता परमात्मा तो सुख भोगने से भी परे की अवस्था वाले हैं। हर देवता का निवास स्थान स्वर्ग माना जाता है; परन्तु शंकर का स्थान स्वर्ग में नहीं दिखाते। शंकर ही एक ऐसा देवता है, जो सम्पूर्ण वैराग का प्रतीक है और उन्हें सदैव पहाड़ों की ऊँची स्थिति पर तपस्वी रूप में दिखाते हैं। शिव की तपस्या (याद) करते-2 शंकर स्वयं उस भोग की स्थिति से परे हो जाते हैं; इसलिए गीता में भी आया है-

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,
निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥ 5/19

येषां (जिनका) **मनः** (मन) **साम्ये** {आत्मा के रूप विषयक} (समानता में) **स्थितं** (स्थिर है), **तैः** (उन्होंने) **इह** (यहाँ इसी संसार में) **एव** (ही) **सर्गः** (जन्म-मृत्यु रूप संसार को) **जितः** (जीत लिया है); **हि** (क्योंकि) **ब्रह्म** (परंब्रह्मतत्व) **निर्दोषं** (दोष-पापरहित) {और} **समं** (समान है); **तस्मात्** (इसलिए) **ते ब्रह्मणि स्थिताः** (वे ब्रह्मतत्व में ही स्थिर हैं)।

शिव जिस साकार द्वारा अपना कार्य कर दुनिया में प्रत्यक्ष होते हैं, वह जीते जी संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। न वह पाप भोगता है, न ही पुण्य; इसलिए शिव-शंकर अभोक्ता कहलाते हैं। न वह सुख भोगता है और न ही दुख भोगता है, अपनी कर्मेन्द्रियों को वश में कर, सदैव वैराग अवस्था में स्थित रहता है। इनमें से कोई भी बात कृष्ण के लिए लागू नहीं होती अर्थात् कृष्ण शिव का साकार अभोक्ता स्वरूप नहीं है, कृष्ण तो सुख और दुःख दोनों ही भोगता है।

इसी अभोक्तापन के गुण से परमपिता परमात्मा का एक और गुण सिद्ध होता है और वह है- अकर्ता।

अकर्ता - किसी भी भोग को न भोगने के कारण, परमपिता परमात्मा शिव द्वारा किए हुए कर्म का कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं होता। इसी को कर्म करते हुए भी न करने वाला अर्थात् अकर्ता कहा जाता है। कर्मों की गुह्य गति को जानने के कारण, वे सदैव अकर्ता कहलाते हैं। उसी प्रकार पुरुषार्थ से

शिव समान बना उनका साकार स्वरूप भी हर कर्म को निष्काम रूप से करता है। गीता में भी आया है कि

त्यक्त्वा, कर्मफलासंगम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः,

कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किंचित्, करोति, सः ॥ 4/20

निराश्रयः (सांसारिक आश्रय से रहित), **कर्मफलासंगम्** (सांसारिक कर्म के फल की आसक्ति को) **त्यक्त्वा** (त्यागकर) **नित्यतृप्तः** (सदा संतुष्ट हुआ) **सः** (वह व्यक्ति) **कर्मणि** (कर्म में) **अभिप्रवृत्तः** (अच्छी तरह लगा रहने पर) **अपि** (भी) **किंचित् एव** (कुछ भी) **न करोति** (नहीं करता)।

निष्काम कर्म का अर्थ है- किसी भी कर्म के फल की इच्छा न करना; इसलिए परमपिता परमात्मा शिव के साकार स्वरूप का मुख्य गुण है ही कर्मों के प्रति सम भाव। गीता में भी आया है कि

न, द्वेष्टि, अकुशलम्, कर्म, कुशले, न, अनुषज्जते,

त्यागी, सत्त्वसमाविष्टः, मेधावी, छिन्नसंशयः ॥ 18/10

त्यागी (कर्मफल का त्याग करने वाला), **सत्त्वसमाविष्टः** (सतोगुणी स्वभाव वाला), **छिन्नसंशयः** (संशयहीन) {और} **मेधावी** (बुद्धिमान् व्यक्ति) **अकुशलं** (कुशलता रहित-अप्रिय) **कर्म** (कर्म से) **न द्वेष्टि** (घृणा नहीं करता) {और} **कुशले** (प्रिय कर्म में) **न अनुषज्जते** (लगाव नहीं रखता);

निष्काम कर्म करने वाला कभी कर्मों में नहीं बँधता। जो कर्मों में नहीं बँधता, वह जन्म-मरण के चक्कर से भी न्यारा होता है। अब परमपिता शिव को अपने साकार स्वरूप द्वारा अकर्ता का प्रमाण भी देना होगा। तो वह प्रमाण क्या है ? गीता में इस पर एक श्लोक आया है-

यस्य, न, अहंकृतः, भावः, बुद्धिः, यस्य, न, लिप्यते,

हत्वा, अपि, स, इमान्, लोकान्, न, हन्ति, न, निबध्यते ॥ 18/17

यस्य (जिस ज्ञानी को) **अहंकृतः** ('मैंने किया है' ऐसा) **भावः** (भाव) **न** (नहीं है), **यस्य** (जिसकी) **बुद्धिः** (बुद्धि) **न लिप्यते** (कर्म में लिप्त नहीं होती), **सः** (वह) **इमान्** (इन) **लोकान्** (कलियुगी पापी लोगों को) **हत्वा** (मारकर) **अपि** (भी) **न हन्ति** (नहीं मारता) {और} **न निबध्यते** (न बंधनयुक्त होता है)।

अब ऐसा कौन-सा देवता है, जो सारी मानवीय सृष्टि के विनाश के लिए निमित्त है और सम्पूर्ण सृष्टि का संहारकर्ता होते हुए भी पाप से परे हैं? यह कार्य सिर्फ शंकर का ही है। कृष्ण का यह कार्य नहीं है। यही प्रमाण है परमपिता परमात्मा शिव के अपने साकार स्वरूप द्वारा अकर्तापन को साबित करने का। परमपिता परमात्मा शिव, शंकर द्वारा ही अकर्ता है। कृष्ण को अकर्ता नहीं कहेंगे। अगर कृष्ण अकर्ता होते, तो जन्म-मरण के कर्म-बंधन से मुक्त होते; परन्तु ऐसा नहीं है। शंकर को तो वैसे भी अजन्मा तथा अमर कहा जाता है; अतः शिव-शंकर ही अकर्ता है।

जिस तरह से श्लोकों में आया है कि अकल्याणकारी कर्म के प्रति कोई द्वेष नहीं, इससे यह साबित होता है कि कर्म के प्रति कोई घृणा नहीं करते। ज्ञानसागर-मंथन की विख्यात विषपान कथा भी यह बात साबित करती है। कथा इस तरह है कि ज्ञानसागर-मंथन द्वारा जब निंदा रूपी विष निकला, तो उसे पीने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। ब्रह्मा, विष्णु सहित समस्त देवताएँ तथा असुर- सभी उस निंदा रूपी हलाहल विष से दूर रहकर भयभीत हो उठे; परन्तु सृष्टि के कल्याण हेतु केवल शिव ने ही शंकर द्वारा उस हलाहल विष को कलंकीधर स्वरूप में ग्रहण किया। इस कलंक रूपी विष पीने के कर्म का उन पर कोई असर नहीं हुआ। अब इससे बढ़िया अकर्तापने का प्रमाण क्या हो सकता है! अकर्ता का यह प्रमाण भी किसी भी प्रकार से कृष्ण के लिए लागू नहीं होता।

<u>परमपिता परमात्मा का साकार धाम :-</u>

धाम का अर्थ ही है- घर। आत्माएँ अपने पिता, परमपिता परमात्मा शिव के साथ शान्तिधाम अर्थात् परमधाम में रहती हैं और फिर नंबरवार अपने पार्ट अनुसार इस मृत्युलोक में आकर पार्ट बजाती हैं। यहाँ, इस सृष्टि पर आत्मा का घर क्या है? 5 तत्वों का बना हुआ यह शरीर ही आत्मा का घर है, नगर है; इसलिए शास्त्रों में आत्मा को 'पुरुष' शब्द से सम्बोधित किया गया है। पुरुष का अर्थ ही है- शरीर रूपी पुरी में शयन अर्थात् आराम करने वाली आत्मा। अब प्रश्न यह उठता है कि परमपिता परमात्मा का वह साकार घर कौन-सा है, वह पुरी कौन-सी है? इसके बारे में गीता में स्पष्ट आया है कि

परः, तस्मात्, तु, भावः, अन्यः, अव्यक्तः, अव्यक्तात्, सनातनः,
यः, स, सर्वेषु, भूतेषु, नश्यत्सु, न, विनश्यति ॥ 8/20

तस्मात् (उस) **अव्यक्तात्** (अव्यक्त परमधाम से) **तु** (भी) **परः** (बढ़कर) **यः** (जो) **अव्यक्तः** (अप्रगट) {और} **सनातनः** (नित्य), **अन्यः** (दूसरा) **भावः** (भाव अर्थात् आत्मभाव है), **सः** (वह) **सर्वेषु भूतेषु** (सब प्राणियों में) **नश्यत्सु** ({व्यक्त स्वरूप के} नष्ट होने पर भी) **न विनश्यति** (नष्ट नहीं होता)।

अब परमपिता परमात्मा शिव का अव्यक्त साकार स्वरूप कौन है? सभी भूतों के नष्ट होने पर भी जो नष्ट नहीं होता, वह तो सिर्फ भूतों का नाथ- भूतनाथ शंकर ही है। कृष्ण की तो मृत्यु दिखाते हैं अर्थात् कृष्ण भी उन साधारण भूतों में है, जो नष्ट होते हैं। केवल भूतनाथ शंकर ही सभी के नष्ट होने पर भी अविनाशी रहते हैं। यही अव्यय साकार स्वरूप परमपिता परमात्मा शिव का साकार धाम है, न कि कृष्ण। गीता में आया एक श्लोक भी यह साबित करता है कि परमपिता शिव का आधार शंकर महादेव ही साकार परमधाम अर्थात् परमगति है

अव्यक्तः, अक्षरः, इति, उक्तः, तम्, आहुः, परमाम्, गतिम्,
यम्, प्राप्य, न, निवर्तन्ते, तत्, धाम, परमम्, मम ॥ 8/21

अव्यक्तः (अप्रगट ब्रह्मलोक) **अक्षरः** (अविनाशी) **इत्युक्तः** (कहा जाता है), **तं** (उसको) **परमां गति** (परम गति) **आहुः** (कहते हैं)। **यं** (जिसको) **प्राप्य** (पाकर) **न निवर्तन्ते** {प्राणी इस दुःखी संसार में} (नहीं लौटते), **तत्** (वह) **मम** (मेरा) **परमं धाम** (परमधाम है)।

गति का अर्थ है- मुक्ति अर्थात् छुटकारा और सद्गति का अर्थ है- सत्य गति अर्थात् जीवन मुक्ति। दोनों गति की प्राप्ति हमें परमपिता शिव और उनके साकार स्वरूप के मेल से होती है। उस साकार स्वरूप को, जिनके द्वारा हम परमपिता शिव को प्राप्त करते हैं, उन्हें गतियों की गति, परम गति कहा जाता है और वह परम गति का आधार बनने वाला साकार स्वरूप ही शिव का निवास स्थान अर्थात् परमधाम है। अब 'अव्यक्त' अक्षर तो शंकर ही है, कृष्ण नहीं। तो सीधी सी बात है- इस संसार में शिव का मुकर्रर रूप में परमधाम रूपी घर सिर्फ शंकर ही है, कृष्ण नहीं और न ही कोई अन्य देवता {चाहे चार मुखों वाला ब्रह्मा ही क्यों न हो}।

<u>परमपिता परमात्मा का साकार अवतरण काल :-</u>

परमपिता परमात्मा के साकार अवतरण का समय समझने से पहले समय के चक्र को समझना ज़रूरी है। सृष्टि का काल-चक्र 4 युगों में बँटा है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। इनमें सतयुग श्रेष्ठ युग है, त्रेतायुग थोड़ा कम, द्वापरयुग और कलियुग उत्तरोत्तर भ्रष्ट युग हैं। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हर युग में श्रेष्ठता का पतन होता जा रहा है और द्वैतवादी द्वापर युग से भ्रष्टता बढ़ रही है अर्थात् सतयुग 16 कला, त्रेता 14 कला, द्वापर 8 कला और कलियुग कलाहीन हो जाता है। आखिरकार, आज हम कलियुग के उस मुकाम पर खड़े हैं, जहाँ हर जगह अधर्म और भ्रष्टाचार का ही बोल-बाला है तथा श्रेष्ठाचार ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। प्रश्न ये हैं कि कलियुग के बाद कौन-सा युग आता है? उस युग में कौन होंगे? उस युग को कौन लाएगा? इस भ्रष्टाचारी कलियुग का खात्मा कैसे होगा? इससे पहले, हमें शास्त्रों की कुछ बातों की सूक्ष्म पढ़ाई पढ़नी होगी। पहली बात तो यह बताई जा रही है कि, कृपया पृष्ठ-7 का श्लोक 4/7 और पृष्ठ-12 का श्लोक 4/8 देखिए।

अब प्रश्न यह है कि हर युग में भगवान आते हैं क्या? पहली बात, अगर हर युग में भगवान आते तो दुनिया नीचे क्यों गिर रही है? हर युग के बाद, अगला युग कम श्रेष्ठ अथवा अधिक भ्रष्ट क्यों है? अगर भगवान कृष्ण नई दुनिया तथा धर्म स्थापन करने हेतु आते हैं, तो क्या द्वापरयुग के बाद, नीच और पापी कलियुग की स्थापना करने लिए आते हैं? दूसरी बात अगर देखी जाए तो, कुल मिलाकर 4 युग हैं, अगर भगवान हर युग में आकर नए धर्म तथा नई दुनिया की स्थापना करते हैं, तो शास्त्रों में ढेर-के-ढेर अवतार क्यों दिखाए हैं? कहीं दशावतार, तो कहीं 24 अवतार दिखाए गए हैं और उन अवतारों के बीच भी शास्त्रों की बातें गलत सिद्ध हो रही हैं। जहाँ त्रेता में राम और कलियुगी परशुराम को एक ही समय दिखाते हैं- एक स्वयं क्षत्रिय धर्म का पालन करता है, तो दूसरा क्षत्रिय धर्म का विनाश

करता है। एक तरफ, राम और कृष्ण द्वारा आत्मा का परिचय दिया है तो दूसरी तरफ महात्मा बुद्ध द्वारा आत्मा के अस्तित्व को ही मिटाया गया। इन "तुंडे-2 मतिर्भिन्ना" में, शास्त्रों के इस जंजाल में पूरी दुनिया फँस गई है। भगवान क्या नीच युग स्थापन करने आते हैं? नहीं। भगवान क्या हर युग में जन्म लेते हैं? नहीं। वास्तव में, मनुष्य आत्मा अपने कर्मों को, अपने कार्यों को एक जन्म में पूरा नहीं कर पाती; अतः बार-2 जन्म लेती है। भगवान अपना कार्य गर्भ से जन्म लेकर नहीं, बल्कि प्रवेश कर पूरा करते हैं और जिस मनुष्य शरीर का आधार लेकर वे अपना कार्य पूरा करते हैं, उनकी प्रवृत्ति को ही भगवान कहा जाता है। भगवान हर युग में नहीं आते, वे तो एक ही बार पतित नर को पावन पुरुषोत्तम नारायण बनाने लिए, पुरुषोत्तम संगमयुग पर आते हैं अर्थात् कलियुग अंत और सतयुग आदि के संगम पर आते हैं। वे एक ही बार अपने साकार स्वरूप में प्रवृत्त होकर नया धर्म, नई दुनिया नं.वार पुरुषार्थ अनुसार हम बच्चों के लिए स्थापन करते हैं, जहाँ सिर्फ सुख और शान्ति ही है। भगवान की बनाई हुई यही दुनिया, यही सनातन धर्म चारों युगों का चक्कर लगाता है। भल कलियुग के अन्त में आते-2 भगवान का वह धर्म प्रायः लोप हो जाता है; परन्तु पूरा लोप नहीं होता और यही प्रायः लोप स्थिति रहते-2 वे दुबारा इस सृष्टि में आकर, अपने साकार मनुष्य तन में प्रवृत्त होकर, पुनः नई दुनिया, नया धर्म स्थापन करते हैं, जिसे हम भोगी बच्चे ही भोगते-2, चार युगों में बाँटकर, भ्रष्ट कलियुगी दुनिया बनाते हैं। गीता में जो "युगे-2" शब्द आया है, वह वास्तव में हरेक युग नहीं, बल्कि पुरुषोत्तम संगमयुग में हर युग की शूटिग का अंत है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग- इनके पूरे एक चक्र को एक कल्प कहा जाता है। वास्तव में, परमपिता शिव साकार (रूप) से प्रवृत्त होकर, चतुर्युगी के अन्त में भगवान का स्वरूप धारण करते हैं। कब? कलियुग और सतयुग के संगम समय में। तभी तो कहा जाएगा कि भगवान ने नीच-ते-नीच पतित, भ्रष्टाचारी, तमोप्रधान कलियुगी दुनिया को ऊँच-ते-ऊँच पावन, श्रेष्ठाचारी, सतोप्रधान सतयुगी दुनिया बनाया। इस प्रकार श्लोक-"सम्भवामि युगे-2" का अर्थ साबित हो जाता है। कलियुग के अन्त के भी अन्त में परमपिता परमात्मा शिव अपने साकार अणुरूप में प्रवृत्त होकर, परिष्कृत नया धर्म स्थापन करते हैं और पुराने धर्म को नेस्तनाबूद करते हैं; इसलिए तो महाशिवरात्रि गाई जाती है। गीता में आया श्लोक भी कहता है- कृपया पृष्ठ-8 का श्लोक 9/7 देखिए।

अब इससे और स्पष्ट हो जाता है कि एक कल्प के अन्त में अर्थात् कलियुग के अन्तिम समय में परमपिता परमात्मा शिव की प्रकृति अर्थात् साकार प्रवृत्ति में सभी मनुष्यात्माएँ अपना सर्वस्व त्याग कर, आने वाली नई दुनिया, स्वर्णिम सतयुग में उस त्याग का प्रारब्ध पाने के लिए, उसी परमपिता शिव-शंकर से अलौकिक जन्म भी लेते हैं और यही सुधरे हुए जीव नए कल्प का आगमन करते हैं।

इससे यह साबित होता है कि परमपिता शिव अपने साकारी सो निराकारी रूप में सिर्फ कलियुग के अन्त में ही आते हैं और इस पतित दुनिया को पावन बनाते हैं; इसलिए तो भगवान को पतित-पावन

कहा जाता है। परमपिता शिव अपने साकार स्वरूप में हर युग में नहीं आते हैं और न ही अनेक जन्म लेते हैं। वह तो कलियुग अंत में एक ही बार आते हैं और पतित कलियुगी दुनिया को पावन सतयुगी दुनिया बनाते हैं।

परमपिता परमात्मा का साकार अवतरण वाला देश :-

इसमें कोई शंका नहीं कि परमपिता परमात्मा का साकार अवतरण वाला देश कौन-सा होना चाहिए। ज़रूर वह देश प्राचीन, अविनाशी तथा पूजनीय काशी, अयोध्या, मथुरा जैसा ही प्राचीनतम होगा। ऐसा देश और कोई नहीं, बल्कि भारत ही है। ज़रूर परमपिता परमात्मा शिव का साकार माध्यम भी भारत देश का ही वासी होगा; परन्तु यह तो जड़ देश से सम्बन्धित हुआ, फिर चैतन्य देश क्या है? वास्तव में, देश का एक अर्थ है- 'क्षेत्र'। गीता में एक श्लोक आया है-

इदम्, शरीरम्, कौन्तेय, क्षेत्रम्, इति, अभिधीयते,
एतत्, यः, वेत्ति, तम्, प्राहुः, क्षेत्रज्ञ, इति, तद्विदः ॥ 13/1

कौन्तेय (हे अर्जुन)! **इदं** (यह) **शरीरं** (शरीर) **क्षेत्रं** (क्षेत्र) **अभिधीयते** (कहा जाता है); **एतत्** (इसको) **यः** (जो) **वेत्ति** (जानता है), **तं** (उसको) **तद्विदः** (जानकार लोग) **क्षेत्रज्ञः** ('क्षेत्रज्ञ') {अर्थात् 'परमात्मा'} **इति** (इस प्रकार) **प्राहुः** (कहते हैं)।

शरीर को 'क्षेत्र' कहा जाता है और क्षेत्र अर्थात् शरीर को जानने वाला 'क्षेत्रज्ञ'। तो इसका मतलब दुनिया में जितने भी डॉक्टर हैं, वैद्य हैं- क्या सब क्षेत्रज्ञ हो गए? नहीं। वास्तव में, शरीर को जानना मतलब जड़ शरीर या मुर्दे को जानना नहीं; परन्तु उस शरीर की चैतन्यता का कारण कौन? उसका कारण अर्थात् निर्दिष्ट देह वाली आत्मा को जानने वाला ही क्षेत्रज्ञ कहलाता है। ये तो हो गई आत्मा से सम्बन्धित बातें; परन्तु परमपिता परमात्मा के लिए भी ये बातें लागू होती हैं। परमपिता शिव तो सभी ज्योतिबिंदु रूप आत्माओं के पिता हैं। वे जब इस सृष्टि पर आएँगे, तो ज़रूर किसी-न-किसी शरीर द्वारा समस्त मनुष्यात्माओं के सामने प्रत्यक्ष होंगे और उसी चैतन्य शरीर द्वारा पुरानी, पतित, आसुरी, कलियुगी दुनिया को, नई, पावन, दैवी, सतयुगी दुनिया बनाएँगे। तो उस शरीर का भी महत्व है ना! स्वयं परमपिता शिव का रथ बनना बड़े भाग्य की बात है और वही रथ परमपिता शिव का कर्म क्षेत्र कहा जाएगा। गीता में इस पर भी एक श्लोक आया है-

क्षेत्रज्ञम्, च, अपि, माम्, विद्धि, सर्वक्षेत्रेषु, भारत,
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, ज्ञानम्, यत्, तत्, ज्ञानम्, मतम्, मम ॥ 13/2

भारत (हे भरतवंशी)! **सर्वक्षेत्रेषु** (सब क्षेत्र रूपी शरीरों में) **क्षेत्रज्ञं** (क्षेत्र का जानने वाला) **अपि** (भी) **मां** (मुझको) **विद्धि** (जानो)। **क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः** (क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का) **यत्** (जो) **ज्ञानं** (ज्ञान है), **तत्** (वही) **ज्ञानम्** (सच्चा ज्ञान है) - {ऐसा} **मम मतम्** (मेरा मत है)।

हमें भी परमपिता शिव को उनके चेतन शरीर शंकर अथवा कर्मक्षेत्र सहित जानना है, तभी ज्ञानी कहा जाएगा, नहीं तो अज्ञानी कहा जाएगा। इसी चैतन्य शरीर शंकर को परमपिता शिव का कर्मक्षेत्र अथवा भारत देश कहा जाता है। हम सभी ने आज तक भारत माता के जय के नारे लगाए; परन्तु उस भारत माता को भी माता बनाने वाले जगत्-पिता शंकर के प्रैक्टिकल स्वरूप को हम भूल गए और सांवरा सलोना कृष्ण बच्चा याद रह गया। जबकि जगत्-पिता शंकर ही परमपिता शिव का साकार रूप कहलाता है। परमपिता शिव का साकार माध्यम भी वही बनता है; परन्तु उस चैतन्य जगत्-पिता का वास्तविक रूप क्या है ? वह कौन है ? गीता में इस सम्बन्ध में एक श्लोक आया है-

त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्,

वेत्ता, असि, वेद्यम्, च, परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप ॥11/38

त्वं (आप) **आदिदेवः** (सब देवों से भी प्रथम देवादिदेव) **पुराणः पुरुषः** (पुरातन पुरुष हो)। **त्वं** (आप) **अस्य** (इस) **विश्वस्य** (जगत् के) **परं** (परम) **निधानम्** (आश्रय हो), {सब कुछ} **वेत्ता** (जानने वाले हो) **च** (और) **वेद्यं** (जानने योग्य) **असि** (हो)। **परं धाम** (श्रेष्ठ धाम वाले!) **अनन्तरूप** (हे अनंतगुण रूप)! **विश्वं** (जगत्) **त्वया** (आपके द्वारा) **ततम्** (विस्तृत हुआ है)।

शास्त्रों में सनातन पुरुष किसे कहा गया है? आदिदेव किसे कहा जाता है? ये सब शंकर की ही उपाधियाँ हैं। तो ज़रूर जो चैतन्य विश्व-पिता है, वह सिर्फ शंकर है। वही देव-देव-महादेव/आदिदेव/आदम है। जो शिव-शंकर को विश्वपिता के रूप में जानते हैं और मानते हैं, वही बच्चे पक्के भारतवासी कहलाते हैं। वही सच्चे स्वदेशी हैं, बाकी सब हैं विदेशी या विधर्मी।

<u>परमपिता परमात्मा का साकार रूप :-</u>

परमपिता शिव के साकार स्वरूप शंकर पार्टधारी को पहचानना ही सबसे अहम पुरुषार्थ है। गीता में आए श्लोकों द्वारा हम उस साकार परमात्म अणुरूप को समझ सकते हैं। पहली बात तो, हम इसे एक दृष्टांत, एक कहानी के रूप में देखेंगे तो समझ पाएँगे। जहाँ तक सारी दुनिया मानती है कि गीता का ज्ञान श्री कृष्ण ने दिया है, अर्जुन को भी यही लग रहा था; परन्तु गीता में वर्णित परमेश्वर के स्वरूप अथवा गुणों को वह प्रत्यक्ष दृष्टि से नहीं देख पा रहा था; इसलिए परमेश्वर को प्रत्यक्ष रूप में देखने की इच्छा से अर्जुन ने विनती की-

एवम्, एतत्, यथा, आत्थ, त्वम्, आत्मानं, परमेश्वर,

द्रष्टुम्, इच्छामि, ते, रूपम्, ऐश्वरम्, पुरुषोत्तम ॥ 11/3

{फिर भी} **परमेश्वर** (महेश्वर)! **त्वं** (आपने) **आत्मानं** (अपने विभूति स्वरूप को) **यथा** (जैसा) **आत्थ** (बताया है), {यदि} **एतत्** (यह) **एवम्** (ऐसा) {ही है, तो} **पुरुषोत्तम** (हे परमात्मा)! **ते** (आपके) **ऐश्वरं** (ऐश्वर्यवान्) {उस प्रगट} **रूपं** (प्रत्यक्ष विराट रूप को) **द्रष्टुं** (देखना) **इच्छामि** (चाहता हूँ)।

इस पर अर्जुन को यह जवाब मिला-

न, तु, माम्, शक्यसे, द्रष्टुम्, अनेन, एव, स्वचक्षुषा,

दिव्यम्, ददामि, ते, चक्षुः, पश्य, मे, योगम्, ऐश्वरम्॥ 11/8

तु (किंतु) **अनेनैव** (इन्हीं) **स्वचक्षुषा** (अपनी जड़ आँखों से) **मां** (मुझ विराट स्वरूप को) **न द्रष्टुं** (नहीं देख) **शक्यसे** (सकेगा); {अतः} **ते** (तुझको) **दिव्यं** (दिव्य) **चक्षुः** ({ज्ञान} चक्षु) **ददामि** (देता हूँ), {जिससे} **मे** (मेरे) **ऐश्वरं** (विभूतिवान) {और} **योगं** (ज्योतिर्लिंग यौगिक स्वरूप का) **पश्य** (साक्षात्कार कर)।

इससे यह स्पष्ट होता है कि परमपिता शिव को उनके साकार रूप में अगर देखना है, तो उसके लिए ये साधारण चर्मचक्षु काम नहीं आएँगे, भगवान को देखने और समझने के लिए तो तीसरे बुद्धिगत ज्ञान के नेत्र की दरकार है और यह नेत्र सिवाय बुद्धिमानों की बुद्धि परमपिता परमात्मा शिव के कोई दे नहीं सकता। अर्जुन भी अब तक अपने चर्मचक्षु से तथाकथित भगवान कृष्ण को ही समझ रहा था; परन्तु दिव्य चक्षु द्वारा जब अर्जुन ने परमपिता परमात्मा को समझने की कोशिश की, तब उसे यह पता चला कि गीता ज्ञान देने वाला यह कृष्ण नहीं है; इसलिए अर्जुन ने फिर से विनती की-

आख्याहि, मे, कः, भवान्, उग्ररूपः, नमः, अस्तु, ते, देववर, प्रसीद,

विज्ञातुम्, इच्छामि, भवंतम्, आद्यम्, न, हि, प्रजानामि, तव, प्रवृत्तिम्॥ 11/31

देववर (हे देवताओं में श्रेष्ठ महादेव)! **मे** (मुझे) **आख्याहि** (बताइए) {कि} **उग्ररूपः** (ऐसे भयंकर रूप वाले) **भवान्** (आप) **कः** (कौन हैं) ? **ते** (आपको) **नमः** (प्रणाम) **अस्तु** (है)। **प्रसीद** (प्रसन्न हो जाइए)। **भवन्तं** (आपके) **आद्यं** (आदिकालीन रूप को) **विज्ञातुं** (जानना) **इच्छामि** (चाहता हूँ); **हि** (क्योंकि) **तव** (आपके) **प्रवृत्ति** (क्रियाकलाप को) **न प्रजानामि** (मैं नहीं जानता हूँ)।

इस श्लोक से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन काफी हद तक मूँझ गया था। चर्मचक्षु द्वारा जो उसने देखा, जिसे गीता ज्ञानदाता माना, वे कृष्ण थे; परन्तु अलौकिक तीसरे दिव्य बुद्धि चक्षु द्वारा, जो उसे स्वयं परमपिता परमात्मा ने दिया, उसे कृष्ण नहीं, बल्कि कोई और उग्र रूप वाले दिखाई दे रहे थे। परमपिता परमात्मा के इस भयानक साकार प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, अर्जुन ने यह विनती की। अगर दिव्य चक्षु द्वारा भी अर्जुन को कृष्ण ही दिखाई पड़ते, तो यह पूछने की दरकार ही क्या थी कि आप कौन हैं? इसी से यह स्पष्ट होता है कि परमपिता शिव की साकार प्रवृत्ति कृष्ण नहीं है, बल्कि कोई और है; पर वह है कौन? अर्जुन की इस विनती को सुनकर, भगवान ने जवाब दिया-

कालः, अस्मि, लोकक्षयकृत्, प्रवृद्धः, लोकान्, समाहर्तुम्, इह, प्रवृत्तः,

ऋते, अपि, त्वाम्, न, भविष्यन्ति, सर्वे, ये, अवस्थिताः, प्रत्यनीकेषु, योधाः॥11/32

लोकक्षयकृत् (संसार का महाविनाश करने वाला) **प्रवृद्धः कालः** (महाकाल) **अस्मि** (मैं हूँ) {और} **इह** (कलियुग के अंतकालीन संगमयुग में) **लोकान्** (लोगों को) **समाहर्तुं** (संगठित करने के लिए) **प्रवृत्तः** (लगा हुआ हूँ)। **प्रत्यनीकेषु** (परस्पर विरोधी सम्प्रदायों रूपी सेनाओं में) **ये** (जो) **योधाः** (वाद-विवाद करने वाले योद्धा) **अवस्थिताः** (खड़े हैं), **सर्वे** (वे सब) **त्वां** (तेरे) {धर्मयुद्ध} **ऋते** (न करने पर) **अपि** (भी) **न भविष्यन्ति** (नहीं बचेंगे);

यहाँ पर पूरी तरह से स्पष्ट है कि परमपिता शिव इस सृष्टि पर आते हैं, ताकि पतित दुनिया का विनाश कर, पावन दुनिया की स्थापना प्रत्यक्ष कर सकें। पतित दुनिया का विनाश शंकर के द्वारा ही होता है। परमपिता शिव का साकार स्वरूप जानने के लिए दिव्य चक्षु अर्थात् तीसरे नेत्र की दरकार है। अब जो स्वयं त्रिनेत्री होगा वही तीसरा नेत्र दे सकता है या जिसके पास तीसरा नेत्र है ही नहीं, वह देगा? तो ज़रूर वह भी शिव-नेत्र वाला शंकर ही है। हर प्रकार से यह साबित हो रहा है कि अर्जुन ने जिसे गीता ज्ञानदाता माना था, वह कृष्ण नहीं है, बल्कि गीता ज्ञानदाता तो परमपिता शिव ही अपने साकार स्वरूप त्रिनेत्री शंकर द्वारा साबित होते हैं। इसी निराकार शिव तथा मूर्तिमान शंकर की प्रवृत्ति स्वरूप को भगवान कहा जाता है और कोई भगवान का स्वरूप होता ही नहीं।

<u>परमपिता परमात्मा के साकार अवतरण का नाम :-</u>

कोई भी नाम काम के आधार पर पड़ता है। अच्छे काम करने वालों का अच्छा नाम पड़ता है तो खराब काम करने वालों का खराब नाम पड़ता है। ठीक उसी प्रकार परमपिता शिव के साकार रूप का भी कोई नाम होगा; परन्तु वह क्या है? जिस तरह से परमपिता शिव के नाम का अर्थ है- कल्याणकारी, तो साकार स्वरूप के नाम का मतलब भी कल्याणकारी ही होना चाहिए। कोई पक्षपात नहीं, समत्व दृष्टि होना- यह कल्याणकारी का पक्का प्रमाण हो जाता है। अब समस्त देवताओं में ऐसा कौन है, जो सबको एक समान देखता है, कोई भेद नहीं करता है? ब्रह्मा की अगर बात करें, तो शास्त्रों में यह दिखाया है कि ब्रह्मा ने ज्यादातर वरदान असुरों को दिए हैं, भल देवताओं को भी पसन्द करते हों। रही बात विष्णु की तो विष्णु ने सदैव देवताओं की ही तरफदारी की है। शास्त्रों में तो यही आया है। सिर्फ शंकर ही ऐसा देवता है, जो असुर तथा देवताओं, दोनों को वरदान देता है, दोनों के लिए समत्व दृष्टि रखता है। तो पक्का शिव समान कल्याणकारी हुआ ना!

दूसरी बात, यह है कि कलियुग के अन्त में सृष्टि पूरी तरह से रौरव नर्क बन जाती है, जहाँ पर सभी आत्माएँ दुःखी होती रहती हैं तथा पतित बन शक्तिहीन हो जाती हैं; इसलिए किसी में दुःख का सामना करने की ताकत भी नहीं रहती। इसी दुःख से मुक्त कर, सभी अशान्त आत्माओं को शान्ति अथवा मुक्ति-जीवन्मुक्ति प्रदान करने के लिए, परमपिता शिव इस सृष्टि पर आते हैं। तो शिव की साकार प्रवृत्ति भी ज़रूर इसी विशेषता के लिए मशहूर होगी। वह है- शंकर। शंकर शब्द का अर्थ,

शास्त्रों में कई जगह, शान्त करोति (शंकर), इस तरह से उल्लेख किया गया है। गीता में भी आया है- कृपया पृष्ठ-9 का श्लोक 10/3 देखिए।

इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि हम महेश तथा महान ईश्वर (अर्थात् शंकर) को परमपिता शिव का साकार स्वरूप मानेंगे, तो ही हम पापों से मुक्त होंगे अर्थात् शिव-शंकर भोलेनाथ की प्रवृत्ति ही पतितों को पावन बनाने वाली पतित-पावनी है।

अब यह स्पष्ट है कि परमपिता शिव की साकार प्रवृत्ति का नाम शंकर अथवा महेश अथवा ईश्वर ही है अर्थात् शिव का मुकर्रर साकार स्वरूप शंकर है कृष्ण या और कोई आत्मा नहीं।

यहाँ पर सब स्पष्ट होता जा रहा है कि परमपिता शिव के साकार परमात्म स्वरूप का नाम, रूप, देश, काल, धाम, गुण आदि अब सिर्फ शंकर की ओर ही इशारा करता है, जो स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ज्योतिर्बिंदु की याद में तल्लीन होकर निराकारी, निर्विकारी और निरहंकारी बनता है। समस्त देवताओं में कृष्ण सहित किसी को भी इतने महान तपस्वी रूप में नहीं दिखाते। इसी तपस्या के बल पर शंकर का पार्ट बजाने वाली हीरो पार्टधारी आत्मा, शिव समान स्थिति को प्राप्त करती है, जिससे दुनिया शिव और शंकर के भेद को पहचान ही नहीं पाती और आखिरकार शिव-शंकर को एक कर देती है। उस शंकर वाली एकमात्र आत्मा के लिए ही कहा जाता है-'आत्मा सो परमात्मा'। यह बात सिर्फ एक शंकर के लिए ही लागू होती है; परन्तु प्रत्येक आत्मा के लिए यह बात लागू कराकर, हमने भगवान को सर्वव्यापी बनाने का जघन्य अपराध किया है। गीता ज्ञानदाता शिव-शंकर ही भोलेनाथ की अव्यभिचारी प्रवृत्ति है, न कि कृष्ण या अन्य कोई भी आत्मा; इसलिए गीता में भी आया है-

ततः, पदम्, तत्, परिमार्गितव्यम्, यस्मिन्, गताः, न, निवर्तन्ति, भूयः,
तम्, एव, च, आद्यम्, पुरुषम्, प्रपद्ये, यतः, प्रवृत्तिः, प्रसृता, पुराणी॥ 15/4

ततः उस {कलियुगी अधोवर्ती लोक} **से तत्** (उस) **पदं** (विष्णु पद को) **परिमार्गितव्यं** (खोजना चाहिए अर्थात् जानना चाहिए), **यस्मिन्** (जिसमें) **गताः** (गए हुए) **भूयः** (पुनः) **न निवर्तन्ति** {इस दुःखी संसार में} (नहीं लौटते)। **तमेव** (उसी) **आद्यं** (आदि) **पुरुषं** (पुरुष शिव के साकार रूप-आदिदेव की) **प्रपद्ये** (शरण लेना चाहिए), **यतः** (जिससे) {इस सृष्टि वृक्ष की} **पुराणी** (पुरानी) **प्रवृत्तिः** (प्रक्रिया) **प्रसृता** (प्रसारित हुई है)।

वह कोई और नहीं, बल्कि सारी स्वधर्मी-विधर्मी सृष्टि रूपी वृक्ष का बीज, परमपिता शिव के साकार स्वरूप शंकर/आदम का ही यादगार है। जिस तरह से इस सृष्टि में हर ओर विरोधाभास देखने को मिलता है, इससे यह स्पष्ट है कि सृष्टि के बीज में भी वे गुण होंगे।

सृष्टि में दैवी लोग भी हुए तो असुर भी हुए; दिन भी है तो रात भी है, अच्छे भी हैं तो बुरे भी हैं। जिस तरह से यह सृष्टि विपरीत गुणों से बनी हुई है, ठीक उसी तरह सृष्टि के बीज शंकर की भी यादगार

है। स्वयं में ही माता तथा पिता के अर्धनारीश्वर रूप को बाँधा हुआ है। मस्तक में अर्ध चन्द्रमा के रूप में अमृत को दर्शाते हैं, तो हलाहल विष पीकर पाप का निवारण स्वरूप भी बनते हैं। भोलों के लिए भोले, तो छलछिद्र-कपटियों के लिए भाले भी कहलाते हैं। देवताओं में महान अष्टदेवों में ईश्वर कहलाते हैं तो असुर, भूत-प्रेत तथा राक्षसी स्वभाव वालों के भी ईश्वर कहलाते हैं। शीतलता की प्रतीक गंगा को भी जटाओं में धारण किया है, तो प्रलयंकारी स्वरूप में तीसरे नेत्रधारी के रूप में विख्यात हैं। बड़े-ते-बड़े देहभानी जानवर- हाथी के चर्म का वस्त्र धारण कर गजचर्मधारी कहलाते हैं तो परमपिता शिवज्योति की याद में विलीन होकर, निराकारी नग्न रूप आत्मा स्वरूप में भी दिखाई देते हैं। इन विपरीत गुणों को भी समाधान रूप से सहयोग देकर, दोनों को जोड़े रखने की क्षमता भी सिर्फ शंकर में ही है; इसलिए सभी के लिए कल्याणकारी साबित होते हैं। भल वह असुर हो या फिर देवता सभी के लिए साक्षी रूप से, समत्व दृष्टि से ही सहयोग करते हैं; इसलिए गीता में भी स्पष्ट आया है-

तपामि, अहम्, अहम्, वर्षम्, निगृह्णामि, उत्सृजामि, च,

अमृतम्, च, एव, मृत्युः, च, सत्, असत्, च, अहम्, अर्जुन ॥ 9/19

अहं तपामि (मैं ज्ञान सूर्य बनकर तप रहा हूँ), **अहं वर्षं** (मैं मेघ बनकर ज्ञान वर्षा करता हूँ), **निगृह्णामि** (सूर्य रूप में ज्ञान जल खींचता) **च** (और) **उत्सृजामि** (छोड़ता हूँ) **च** (और) {मैं} **अमृतं** (ज्ञान रूपी अमृत हूँ) **च** (और) **असत् मृत्युः** (असत्य रूपी मृत्यु) **च** (भी हूँ)। **अर्जुन** (हे सद्भाग्य अर्जनकर्ता अर्जुन)! **सत्** (सदा सत्य) **अहं** (मैं) {ही हूँ}।

ये गुण स्पष्ट रूप से उसी एकमात्र साकार के गुणों को दर्शाते हैं। इनमें से एक भी गुण कृष्ण के लिए लागू नहीं होता। गीता का भगवान अर्थात् गीता ज्ञानदाता सिर्फ शिव+शंकर भोलेनाथ है, न कि कृष्ण बच्चा। इसी को धर्म और अधर्म का मुख्य कारण माना गया है। वास्तविक स्वरूप को भगवान का साकार रूप न मानकर, किसी अन्य देहधारी को मानना ही अधर्म है, घोर पाप है; इसलिए शिव+शंकर भोलेनाथ को गीता का भगवान मानने वाले पांडव हैं और श्रीकृष्ण (तथा अन्य व्यासादि गुरुओं) को गीता का भगवान मानने वाले, अधर्म के राह पर चलने वाले कौरव हैं।

यहाँ पर तीनों प्रकार के लोग स्पष्ट हो जाते हैं। एक वे, जो परमपिता+परमात्मा को सिर्फ नूर, निराकारी ज्योतिर्बिन्दु के रूप में मानते हैं अर्थात् यादव और दूसरे वे, जो साकार में भगवान को मानते तो हैं; परन्तु कृष्ण तथा अन्य व्यासादि देहधारियों को ही भगवान के रूप में गीता ज्ञानदाता मानते हैं अर्थात् कौरव और मुख्य तीसरे वे, जो निराकार ज्योतिर्बिन्दु भगवान को मानकर, उनके प्रैक्टिकल साकार स्वरूप, शिव+शंकर भोलेनाथ को ही गीता ज्ञानदाता मानते हैं अर्थात् पांडव।

उत्थान और पतन का आधार - गीता

<u>वास्तव में पांडव और कौरव :-</u>

पांडव और कौरवों की कहानी हम बचपन से ही सुनते आ रहे हैं। आपस में भाई होने के बावजूद भी, दोनों गुटों में, उनकी सोच में जमीन-आसमान का अन्तर था। पांडव भगवान की बताई हुई धर्म की राह पर चलने वाले, वीर और श्रेष्ठाचारी थे। वे सदैव परमार्थ तथा विश्व कल्याणकारी भावना से जीते रहे। इसके विपरीत कौरव सदैव स्वार्थ हेतु, धर्म की राह की निदा कर, अधर्म की राह पर ही चलते रहे। पांडव संख्या में 5 अर्थात् इन उंगलियों पर गिने जा सकते थे और कौरव संख्या में 100 अर्थात् पांडवों के मुकाबले अधिकतम संख्या वाले थे; परन्तु इसके बावजूद अन्तिम विजयी कौन हुए? पांडव। धर्म की राह पर चलने वालों की भल बहुत परीक्षा हों; परन्तु सत्य के आगे सब हारते हैं और इस सच्चे धर्म का परिचय भी हमें परमपिता शिव अपने साकार स्वरूप विवस्वान में आकर देते हैं। वह भगवान (का) स्वरूप है ही शिव+शंकर भोलेनाथ; परन्तु गीता में कृष्ण का नाम डालकर तथा कृष्ण को ही गीता का भगवान बताकर, घोर अधर्म किया गया। भगवान और देवता में विशेष अन्तर है। वास्तव में मनुष्य ही दैवी गुण धारण कर देवता बनता है तो आसुरी गुण धारण कर असुर भी बनता है। कृष्ण ने भी अपने पुरुषार्थ से और भगवान की राह पर चलकर, यह 16 कला सम्पूर्ण देवता पद का प्रारब्ध पाया है; परन्तु भगवान तो स्वयं राह बताने वाले हैं। देवताएँ तो कलाओं में गिने जाते हैं- 16 कला सम्पूर्ण, सर्वगुण सम्पन्न, मर्यादा पुरुषोत्तम आदि; लेकिन भगवान तो कलातीत हैं, कलाओं से परे हैं, गुणों से परे हैं, शरीर में रहते हुए भी शरीर से परे की स्थिति- निराकारी स्थिति में रहने वाले हैं। गीता में भी आया है कि

अनादित्वात्, निर्गुणत्वात्, परमात्मा, अयम्, अव्ययः,
शरीरस्थः, अपि, कौन्तेय, न, करोति, न, लिप्यते॥ 13/31

कौन्तेय (हे कुंती पुत्र अर्जुन)! **अयं** (यह) **परमात्मा** (परम+आत्मा) **अनादित्वात्** (अनादि होने से) {और} **निर्गुणत्वात्** (तीन गुणों के समुदाय से रहित होने के कारण) **अव्ययः** (क्षयरहित है), {जिससे} **शरीरस्थः** (प्रजापिता ब्रह्मा के शरीर में रहते हुए) **अपि** (भी) **न करोति** (न कर्म करता है), **न लिप्यते** (न उनमें लिप्त होता है)।

इसलिए शिव के साकार स्वरूप शंकर को ही शिव के प्रतीक रूप में अल्प वस्त्र या निर्वस्त्र दिखाया जाता है। निर्वस्त्र और नग्न शंकर का ज्योतिर्लिंग रूप ही उनके निराकारी होने का प्रमाण है अर्थात् देह का भान न होना; परन्तु कृष्ण तो दैवी गुण वाला देवता है, निर्गुण भगवान नहीं। पिछले श्लोक में भगवान के अभोक्तापन की स्थिति का भी परिचय दिया गया है। हलाहल विष पीते हुए भी उसमें लिम्पायमान न होना- यह भी शंकर के अभोक्तापन की निशानी है। कृष्ण तो भोक्ता है। तमाम देवताएँ भी भोगी हैं। मनुष्य ही पुरुषार्थ कर देवता बनता है और स्वर्ग प्राप्त करता है और फिर श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सुख भोगते-2 मनुष्य बनता है। गीता में आया एक श्लोक भी इसे स्पष्ट करता है-

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति,
एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामा, लभन्ते ॥ 9/21

ते (वे ज्ञानी जन) **तं** (उस) **विशालं** (विशाल) **स्वर्गलोकं** (सतयुगी-त्रेतायुगी स्वर्गलोक को) **भुक्त्वा** (भोगकर), **पुण्ये क्षीणे** (पुण्य कर्मों की प्रारब्ध क्षीण होने पर) **मर्त्यलोकं** (द्वापर-कलियुगी मृत्युलोक में) **विशन्ति** (प्रवेश करते हैं)। **एवं** (इस प्रकार) **त्रयीधर्मं** (ब्राह्मण, देव और क्षत्रिय-इन तीन धर्मों का) **अनुप्रपन्नाः** (अनुकरण करने वाले) **गतागतं** (भूत-भविष्य सम्बंधी) **कामकामाः** (काम्य कामनाओं को) **लभन्ते** (पाते हैं)।

अर्थात् वे पुण्य कर स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने से मृत्युलोक में आते हैं। इस स्वर्गलोक और मृत्युलोक के चक्र में कृष्ण तथा अन्य देवताएँ भी आते हैं; परन्तु शिव+शंकर भोलेनाथ नहीं; क्योंकि वह देवता नहीं; परन्तु भगवान की प्रवृत्ति है; इसलिए तो अमरनाथ कहलाते हैं। कृष्ण को तो अमरनाथ नहीं कहते। इतना सब स्पष्ट होने के बावजूद, वास्तविक रूप में गीता का भगवान अजन्मा, अकर्ता, अभोक्ता, निराकारी परमपिता परमात्मा शिव-शंकर भोलेनाथ को न मानकर, जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसने वाले, कर्ता, भोक्ता, साकारी देवात्मा कृष्ण को मानना, सनातन धर्म के रचयिता, भगवान की सरासर निंदा है। इससे ही सनातन धर्म का पतन हुआ है।

अतः कृष्ण को गीता का भगवान मानने वालों को अंधों की औलाद अंधे कौरव ही कहेंगे और शिव-शंकर भोलेनाथ को गीता के तमाम श्लोकों अनुसार गीता का मूर्ति वाला महादेव जिसमें अमूर्त भगवान शिव को प्रमाण सहित साकारी सो निराकारी जानकर, समझकर तथा मानकर चलने वालों को पांडव ही कहेंगे। इसी सत्य-असत्य की बात को मानने एवं न मानने से तथा उन राहों पर चलने एवं न चलने से ही पांडवों और कौरवों की उत्पत्ति होती है। यह बात स्पष्ट है कि कौरवों की संख्या आज भी पुरुषोत्तम संगमयुग की शूटिंग काल में पांडवों से अत्यधिक है।

अब सवाल यह है कि पांडव और कौरवों की उत्पत्ति पैदाइश कराने वाला यह शूटिंग कालीन युग होता कब है? क्या द्वापरयुग में? नहीं। पांडव और कौरव- ये वास्तव में कलियुगादि और सतयुगांत के इसी पुरुषोत्तम संगम- समय की ब्रह्मा की मानसी सृष्टि की यादगार है, जब परमपिता शिव परमात्मा अपने साकार स्वरूप पंचमुखी परंब्रह्मा की अर्धनारीश्वर प्रवृत्ति द्वारा इस सृष्टि पर आकर कलियुगी नर्क को सतयुगी स्वर्ग बनाकर पतितों को पावन बनाते हैं।

<u>सच्ची गीता बनाम झूठी गीता :-</u>

शास्त्रों में गायन है कि कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम था दिति खण्डित ब्रह्मचर्य वाली और दूसरी का नाम था 1 पतिव्रता अखण्ड ब्रह्मचारिणी अदिति। दिति से दैत्यों की पैदाइश हुई, तो अदिति से देवताओं की पैदाइश हुई। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि कश्यप ऋषि के स्वयं ही सर्व

प्राणी बीज होने के बावजूद, दो विभिन्न धरणियों अखंड भारतमाता अदिति& सप्तद्वीपा दिति की बदौलत दो अलग-2 सोच, रंग और वृत्ति वाली सन्तानों सुरों-असुरों की पैदाइश हुई। यही पांडवों और कौरवों की भी कहानी है। यही देव-दानवों या राम-रावण की कथा है।

गीता ज्ञान दाता अर्थात् गीता पति भगवान तो परमपुरुष शिव+शंकर महादेवता ही हैं, जिनकी प्रवृत्ति नें गीतामाता को रचा है, जो गीता सर्वशास्त्रमयी शिरोमणि कहलाती है; परंतु गीता के दो मिलेजुले महालक्ष्मी रूप हैं। एक गीता वह रूप, जिसमें गीता का भगवान स्पष्ट रूप से कलातीत सूर्य शिव-शंकर भोलेनाथ को माना गया है। यही गीता माता कहो, ऊषा या लाली माँ कहो वास्तव में सच्ची, अखंडित और पवित्र अदिति माता है। दूसरी गीता वह दिति माता है, जिसमें गीता का पति भगवान देवता कलाबद्ध कृष्णचंद्र को बनाया गया है। यह हो गई खंडित अर्धचन्द्र वाली झूठी गीता। दिति का अर्थ ही है खंडित।

आदि में गीता को सिर्फ निराकारवादी रचना माना गया था; परंतु परवर्ती गुरु-गोसाइयों ने उसमें सलोने कृष्ण बच्चे का नाम डाल दिया। यह बात प्रसिद्ध देशी-विदेशी बुद्धिवादी इतिहासकारों ने भी स्पष्ट की है। होपकिंस ने रिलीजन्स ऑफ इंडिया (1609), पृष्ठ 396 पर (राधाकृष्णन-गीता, पृष्ठ 17 से) कहा है "गीता का अब जो कृष्णप्रधान रूप मिलता है, वह पहले कोई विष्णुप्रधान कविता थी और इससे भी पहले वह कोई निस्सम्प्रदाय रचना थी।'' रिलीजिन्स लिट्रेचर ऑफ इंडिया (1620), पृष्ठ 12-14 पर फर्कुहार ने लिखा है- "यह गीता एक पुरानी पद्य उपनिषद है, जो कि सम्भवतः श्वेताश्वतरोपनिषद के बाद लिखी गई है और जिसे किसी कवि ने कृष्णवाद के समर्थन के लिए ई.सन के बाद वर्तमान रूप में ढाल दिया है।" गर्वे के अनुसार- "भगवद्गीता पहले एक सांख्य योग सम्बन्धी ग्रंथ था, जिसमें बाद में कृष्णवासुदेव पूजा पद्धति आ मिली और ईस्वी की तीसरी शताब्दी में इसका मेलमिलाप आज भी मंदिरों में यादगार बनें कलाबद्ध बच्चा कृष्ण को विष्णु का नौजवान रूप बनाकर, वैदिक परम्परा के साथ बिठा दिया गया। मूल रचना ईस्वी पूर्व 200 में लिखी गई थी और इसका वर्तमान रूप ईसा की दूसरी शताब्दी में किसी वेद+आन्त के अनुयायी द्वारा तैयार किया गया है।" होल्टेज मैन, गीता को सर्वेश्वरवादी कविता का बाद में विष्णुप्रधान बनाया गया रूप मानते हैं। कीथ का भी विश्वास है कि मूलतः गीता श्वेताश्वतर के ढंग की उपनिषद थी; परन्तु बाद में उसे कृष्ण पूजा के अनुकूल ढाल दिया गया (राधाकृष्णन-गीता की भूमिका, पृष्ठ 17 से उद्धृत)

निस्संदेह ये बातें स्पष्ट करती हैं कि गीता निराकारवादी रचना है; लेकिन कृष्ण के अंधश्रद्धालु भक्तों ने उसमें कृष्ण का नाम डाल दिया। इससे वह गीता खण्डित हो गई। गीता के खण्डित होने से सनातन धर्म का अस्तित्व भी प्रायः लोप होता गया। उसी सनातन धर्म का बदला हुआ दूसरा रूप 'हिन्दू' कहलाता है। हिन्दू धर्म में तो गीता को पूरी तरह से खण्डित किया गया। दुनिया के तमाम शास्त्रों की

टीकाओं से भी अधिक टीकाएँ गीता पर की गई हैं और सभी टीकाएँ एक-दूसरे को काटती हैं। "तुंडे-2 मतिर्भिन्ना।" गीता पर जिन-जिन्होंने टीकाएँ की हैं, वे सब दाढ़ी मूँछ के विकारी मनुष्य ही थे और सभी मनुष्य तो विकारी ही होते हैं। विकारी बुद्धि द्वारा की गईं टीकाएँ व्यभिचार की ओर ले जाएँगी या अव्यभिचार की ओर? इसलिए गीता का सच्चा और शुद्ध अर्थ स्वयं गीता को रचने वाले निराकारी सो साकारी शिव+शंकर भोलेनाथ ही बता सकते हैं। उन्हीं की गीता सच्ची गीता माता कही जाएगी और जिस गीता में कृष्ण को रचयिता अथवा गीता ज्ञानदाता मानते हैं, वह गीता झूठी तथा खण्डित कही जाएगी। इसी सच्ची एवं झूठी गीता के भेद से ही पांडव और कौरवों की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है। ये सच्ची एवं झूठी गीता तथा पांडव और कौरव- यह कोई द्वापरयुग की बात नहीं, बल्कि अभी इस कलियुग अंत समय की बात है, (जो) कलियुग अन्त और सतयुग का आदि अर्थात् दोनों का संगम समय पुरुषोत्तम संगमयुग है; इसलिए गीता में आया है-

सर्वधर्मान्, परित्यज्य, माम्, एकम्, शरणम्, व्रज,

अहम्, त्वा, सर्वपापेभ्यः, मोक्षयिष्यामि, मा, शुचः॥ 18/66

सर्वधर्मान् {मठ-पंथ सम्प्रदायादि दैहिक दिखावे वाले} (सब धर्मों का) **परित्यज्य** (परित्याग करके) **मां** (मुझ निराकार स्थिति वाले की) **शरणं** (शरण में) **व्रज** (जा)। **अहं** (मैं) **त्वा** (तुझे) **सर्वपापेभ्यः** (सब पापों से) **मोक्षयिष्यामि** (मुक्त कर दूँगा)। {तू} **मा शुचः** (शोक मत कर)।

अब सभी धर्मों की बात करें, तो द्वैतवादी द्वापर, 2500 वर्ष से पहले तो इतने सभी धर्म थे नहीं। यह इस कलियुग अंत समय की बात है। पांडव तथा कौरव, उन दोनों की प्रेरणा रूप दो गीताएँ- एक सच्ची तथा दूसरी झूठी और सच्चे भगवान का सच्चा मौजूदा स्वरूप, सभी इस वक्त इस कलियुग तथा आने वाले सतयुग के संगम समय में अपना पार्ट बजा रहे हैं और धीरे-2 दो गुट स्पष्ट होते जा रहे हैं- सत्य पांडवों का समुदाय और असत्य कौरवों का। सत्य के साथ भगवान है, तो झूठ के पास सांसारिक भौतिकवादी तन-बल, धन बल और असंख्य जनबल है। सत्य भगवान के सहयोग से, आदम/अर्जुन/आदिदेव ही मनोबल को तैयार करता है। अब सिविल वार द्वारा धीरे-2 महाभारत का वातावरण तीव्रता से अंदर ही अंदर गर्म होता जा रहा है।

भगवान का कर्तव्य

भगवान का मतलब क्या है? भगवान की हमें ज़रूरत क्यों है? ये सवाल बहुत ही मामूली नज़र आता हैं; परन्तु आज यह एक सामाजिक मुद्दा बन चुका है। आज की पीढ़ी 2-3 वर्षीय अल्पकालीन विज्ञान की चमचमाहट, दिखावटी बहुमंजिली इमारतों की तरक्कियों में ही सत्य देखती है और उसी को सर्वस्व मान, नास्तिकता की ओर कदम रख रही है। इन्हें वास्तविक भगवान की ज़रूरत ही नहीं है; क्योंकि इन्हें इनका मनचाहा अल्प कालीन मायावी 2-3 सौ वर्ष का आखिरी फल विज्ञान से मिल रहा

है। इस क्षणभंगुर मूतपलीती कागविष्टाई सुख से, जो अल्प समय ही का होता है, सन्तुष्ट रहने वालों की संख्या आज बढ़ रही है। इस गति को देख ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग सारी दुनिया को पूरी तरह से नास्तिक होने में कोई अधिक समय नहीं लगेगा और वैसे भी दुनिया नास्तिक क्यों न हो! शास्त्रों में अंधश्रद्धा से भरी झूठी बातें डालकर किसी को गुमराह करने की कोशिश करेंगे तो किस बुद्धिमान को आस्था बैठेगी! आज अगर दुनिया नास्तिक बन भी रही है, तो इसके पीछे मूल कारण एक ही है, वह है गीता का भगवान कौन? गीता के भगवान का वास्तविक कर्तव्य क्या है? वे इस सृष्टि पर क्यों आते हैं? इन प्रश्नों के वास्तविक उत्तर से वंचित रहने के कारण दुनिया नास्तिकता की ओर बढ़ रही है। धर्म परिवर्तन जैसे कार्य हो रहे हैं। सभी लोग भारतीय तत्वों से ना-खुश हो, अन्य धर्मों को अपना रहे हैं। अगर इन सवालों के सही जवाब मिल जाएँ, तो अनेक धर्म पनपेंगे ही नहीं, अपितु सब मिलकर एक ही भगवान, बापों के बाप के बच्चे हो जाएँगे; लेकिन इन सवालों का समाधान देगा कौन? वह है भगवान शिव-शंकर भोलेनाथ। इन सवालों के जवाब को ही ज्ञान कहा जाता है और ज्ञान आता ही है ज्ञानदाता एकमात्र व्यक्तित्व शिव+शंकर भोलेनाथ से; इसलिए भक्तिमार्ग में शिव+शंकर के मन्दिर में जाने वालों का नारा ही है "भर दे झोली-भर दे झोली।" यह झोली कोई स्थूल धन से नहीं, बल्कि ज्ञान रत्नों से भरनी है, जिस पर शान्ति और सुख प्राप्त करने का मार्ग निर्भर है। यही अखूट ज्ञान भंडारी भगवान के अहम कर्तव्यों में से एक कर्तव्य है। ज्ञान का अर्थ है- सत्य की जानकारी। समझ को ही ज्ञान कहा जाता है। जिसको यह ज्ञान का पहले-2 परमप्रसिद्ध तीसरा नेत्र मिलता है, वही त्रिनेत्री महादेव सच्चा ज्ञानी है। इसको ही त्रिमूर्ति शिव कहा जाता है। यह खास शंकर महादेव की निशानी है।

परन्तु क्या सिर्फ ज्ञान देने से ही भगवान का कार्य पूर्ण हो जाएगा? भगवान का अहम कर्तव्य, जिस वजह से वे इस सृष्टि पर आते हैं, वह क्या है? वह है इस पतित, तमोप्रधान, कलंकी दुनिया को पावन, **सत्त्व**प्रधान, निष्कलंकी दुनिया बनाना अर्थात् पतित नर्क से पावन स्वर्ग बनाना; इसलिए ही भगवान को पतित-पावन कहा जाता है और जब हम पावन बनेंगे तो शान्ति और सुख अपने आप स्थापन हो जाएगी। तो हम स्वर्ग में हुए ना! और यह संभव है ही शिव+शंकर की प्रवृत्ति से। गीता में भी श्लोक आया है कि

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्,
कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, स, युक्तः, स, सुखी, नरः ॥ 5/23

इह एव (इस लोक में ही) यः (जो पुरुष) शरीरविमोक्षणात् (शरीर छूटने से) प्राक् (पहले) कामक्रोधोद्भवं (काम-क्रोध से उत्पन्न हुए) वेगं (आवेग को) सोढुम् शक्नोति (सहन कर सकता है), स नरः (वह मनुष्य) युक्तः (योगी है), स सुखी (वही सुखी है)।

अपने मूतपलीती- पतितपने वाले इस काम विकार और क्रोध को शास्त्रों में किसने जीता है? वह शंकर ही है; इसलिए स्पष्टरूप से अमूर्त शिव & मूर्तिमंत शंकर की अर्धनारीश्वरी भगवान रूपी प्रवृत्ति को ही पतित-पावन कहा जाएगा। असली शान्तिदेवा और सुखदेवी भी तो वही है। जो राजधारी खुद अपने पतितपने को खत्म कर सकता है, वही दूसरों को भी पतितपने से निजात दिला सकता है। यही भगवान का वास्तविक कर्तव्य है। इसी कार्य के लिए भगवान शिव इस सृष्टि में अपने एकव्यापी स्वरूप शंकर आदम या अर्जुन द्वारा गुप्त रूप से अपने कार्य को संपन्नता प्रदान कर रहे हैं।

<u>ईश्वरीय महावाक्य 'एकज भूल'</u>

'प्रिय वत्सो!' 5000 वर्ष पूर्व महाभारत के समय मैंने ही अविनाशी रूद्र-ज्ञान सुनाया था, जिसका यादगार शास्त्र श्रीमद् भगवद्गीता गाया जाता है; परन्तु भारतवासियों की सबसे बड़ी भूल यही है कि सर्व शास्त्रमयी शिरोमणि श्रीमद् भगवद्गीता पर मुझ ज्ञान-सागर, गीता-ज्ञान दाता, दिव्य चक्षु विधाता, पतित-पावन, जन्म-मरण रहित, सदा मुक्त, सभी धर्म वालों के गति-सद्गति दाता, परमपिता+परमात्मा शिव का नाम बदल, 84 जन्म लेने वाले, सर्वगुण सम्पन्न, सोलह कलाओं में बंधयामान सत्वप्रधान, सतयुग के प्रथम राजकुमार श्री कृष्ण (जिसने स्वयं इस गीता द्वारा यह पद पाया है) का नाम लिख कर भगवद्गीता को ही खंडन कर दिया है। इस कारण ही भारतवासी मेरे से योग भ्रष्ट हो, धर्म भ्रष्ट, कर्म भ्रष्ट, पतित, कंगाल, दुःखी बन गए हैं।

यदि भारत के विद्वान, आचार्य, पंडित यह भूल न करते तो सृष्टि के सभी धर्म वाले श्रीमद् भगवद्गीता को मुझ निर्वाण धाम ले जाने वाले पंडे (LIBERATOR & GUIDE) परमप्रिय परमपिता शिव के महावाक्य समझ कितने प्रेम और श्रद्धा से अपना धर्म शास्त्र समझ पढ़ते और भारत को मुझ परमपिता की जन्मभूमि (GOD'S BIRTH PLACE) समझ इसको अपना सर्वोत्तम तीर्थस्थान मानते।

<u>कल्पवृक्ष के चित्र में आए हुए परमपिता परमात्मा शिव के महावाक्य</u>

<u>सृष्टि रूपी कल्पवृक्ष का बीज</u>

गीता के निराकार भगवान "ज्योतिलिंगम्" या प्रातसूर्य शिव भगवानुवाच:- हे वत्सों! यह विराट मनुष्य-सृष्टि एक उल्टे वृक्ष के समान है। मैं इसका अविनाशी बीजरूप हूँ और इस सृष्टि के जड़ सूर्य और तारों के प्रकाश के भी पार, ब्रह्मलोक में निवास करता हूँ। मैं अव्यक्तमूर्त परमपिता इस व्यक्त सृष्टि में सर्वव्यापक नहीं हूँ, बल्कि जैसे एक साधारण बीज में सारे वृक्ष के आदि, मध्य तथा अंत के विकास के संस्कार होते हैं, वैसे ही मुझमें भी इस सृष्टि का त्रैकालिक ज्ञान है। अतः केवल मैं ही सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी हूँ। इस कारण मैं ही इस सृष्टि की रचना का सत्य ज्ञान, पुराने वृक्ष के अंत और नए वृक्ष की पुनः स्थापना के समय देता हूँ।

हे वत्सों ! जैसे प्रत्येक साधारण वृक्ष का बीज एक ही होता है। इसी प्रकार मैं बीजरूप परमात्मा भी एक ही हूँ। अन्य सभी मनुष्य मुझ भगवान का रूप नहीं, बल्कि मुझ अनादि और अपरिवर्तनीय बीजरूप की सत्य रचना हैं। इस रचना रूप सृष्टि-वृक्ष को मिथ्या मानना मानो मुझ बीजरूप परमपिता+परमात्मा को मिथ्या मानना है।

ॐ शांति

Contact Us

Address

A-351-352, Vijayvihar, Phase-1, Rithala, Delhi- 110085

Mobile - 9891370007, 9311161007

Email - a11spiritual1@gmail.com

Website – WWW.PBKS.INFO/ADHYATMIK-VIDYALAYA.COM

Youtube – ADHYATMIK-VIDYALAYA OR AIVV

@A1SPIRITUALUNIVERSITY

Twitter - @adhyatmikaivv

Instagram - @adhyatmikvidyalaya

Linkedin – linkedin.com/company/adhyatmik-vidyalaya

01.01.2025